Chapter. 4

चतुर्थ अध्याय

* सितार का सौन्दर्यात्मक मूल्य *

चतुर्थ अध्याय

` सितार का सौन्दर्यात्मक मूल्य `

कलाओं के वर्गीकरण में संगीत कला का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। संगीत का आधार नाद होता है जिसके द्वारा संगीतज्ञ श्रोताओं में तो विभिन्न भाव उत्पन्न कर ही सकता है, साथ ही स्वयं को भी आनंदित करने में समर्थ होता है। संगीत में एक भिन्न प्रकार की अपील करने की सामर्थ्य होती है, यही कारण है कि विद्वान संगीत के प्रभाव को इस प्रकार वर्णित करते हैं :--

`मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है तब उसे कोई त्राण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रंदन की गोद में आश्रय नहीं पाती तो वह संगीत की गोद में गिर जाती है।` -- प्रेमचंद।

इसी प्रकार एक अन्य संगीतशास्त्री संगीत को परिभाषित करते हुए कहते हैं--

` संगीत रूपी सागर को यदि मानसिक व्यथाओं को धोने का कुण्ड कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी।` इसी प्रकार `लोडन` ने भी संगीत की महत्ता को दर्शाते हुए कहा है कि `संगीत विश्व भाषा है। जहां वाणी मूक हो जाती है, वहां संगीत फूट पड़ता है। संगीत हमारी भावनाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति है, जिसकी प्रखरता एवं गहराई शब्दों में नहीं समा सकती, हमारी ऐसी इच्छाओं को संगीत स्वर का रूप देता है।` -- लोडन।

अर्थात् यह पूर्णतः कहा जा सकता है कि संगीत का प्रभाव अत्यन्त गहरा एवं व्यापक होता है। अगर संगीत के इस प्रभाव का कारण देखें तो ज्ञात होता है कि इसके मूल में जो सौन्दर्य छिपा है, वही इसके प्रभाव को द्विगुणित करता रहता है। मानव प्रारम्भ से ही सौन्दर्य का उपासक रहा है। उसके द्वारा बनायी गयी प्रत्येक वस्तु सौन्दर्य से ओतप्रोत दृष्टिगोचर होती है। कलाकार अपनी कला में सौन्दर्य का पूर्णश्लेष समन्वय करने का प्रयत्न करता है क्योंकि कला उसकी सहगामिनी है। अतः कलाकार स्वभाव से ही कला का अनुसरण करता है। सभी कलाओं के मूल में लालित्य का समन्वय अनिर्वचनीय है क्योंकि सभी कलाओं में उपसर्ग की भाँति जुड़ा हुआ 'ललित' शब्द कला का अनुचर ही बन पड़ा है। कला का प्रत्येक प्रकार स्वयं में लालित्य का परिपूर्ण रूप से पालन करता है, यह बात भिन्न है कि उसके अंकन के दृष्टिकोण में भिन्नत्व हो।

सौन्दर्य सार्वजनिक अनुभूति का विषय है। देश और काल की सीमाओं के परे वह मनुष्य मात्र के हृदय को प्रभावित करता है। उसे मानव-मन की सहज वृत्ति भी कह सकते हैं जो सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ परिष्कृत होता आया है। काम के समान उसकी अनुभूति भी अत्यन्त तीव्र, गहरी और व्यापक होती है। इस अपूर्व अनुभूति के उपरांत मनुष्य यह नहीं कह पाता कि सौन्दर्य क्या है।[1]

सौन्दर्य भारतीय वाङ्मय के लिए एक नया शब्द है। इसका निर्माण **Aesthetics** के पर्याय के रूप में हुआ है। **Aesthetics** शब्द यूनानी भाषा के **Aesthesis** शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है 'ऐन्द्रिय संवेदना'। इस प्रकार **Aesthetics** का अर्थ हुआ -- 'ऐन्द्रिय संवेदना का शास्त्र'।[2] सौन्दर्य के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं जिनमें से कुछ विचार निम्नलिखित हैं --

हीगेल के अनुसार[3], 'यह एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सौन्दर्य का सम्पूर्ण क्षेत्र आ जाता है और स्पष्ट रूप से कहें तो इसका क्षेत्र कला का या कहना चाहिये कि ललित कला का क्षेत्र है ।'

सैंटाइना ने[4] 'सौन्दर्य को एक ओर आत्मा और प्रकृति की 'समरूपता' और दूसरी ओर 'विषयीकृत आह्लाद' कहा है ।' इसी प्रकार सौन्दर्य के बृहत् क्षेत्रीय होने के कारण, व्याख्या की कठिनाई को ध्यान में रखकर शिप्ले ने इसे निम्न प्रकार परिभाषित किया है[5] --

The road to beauty is packed with graves of theories, but the ghosts walk, and as the road is always misty, few can tell the vital from the dead.

इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद सौन्दर्य के विषय में कहते हैं[1] कि, 'सौन्दर्यानुभूति मन को इस तरह अभिभूत कर देती है कि बुद्धि के द्वारा उसका अवगाहन असंभव हो जाता है । वह ऐसी उलझन है जिससे सुलझन रूठी हुई है ।'

समस्त ब्रह्माण्ड के रचयिता ब्रह्मा हैं जो कि नारायण भगवान के द्वारा निर्दिष्ट होते हैं ।[6] जब मनुष्य इस परमतत्व (ब्रह्म) को प्राप्त कर लेता है तब यह परमात्मा या ब्रह्म स्वयं ही सत या असती, चित या भाती और आनन्द या प्रीयम के रूप में प्रतीत होता है । परमतत्व के उस मुख्य तत्व को जिससे आनन्द का अनुभव होता है, उसके लिए उपनिषद् 'रस' शब्द का प्रयोग करते हैं । रस के लिए कहा जाता है -- 'रसो वै सः । रसं ह्येव लब्ध्वा आनन्दी भवति ।'

इस आधार पर रस की प्राप्ति ही आनन्द की तरफ ले जाने का एकमात्र साधन है तथा रस ही आनन्द की मूल जड़ है तथा आनन्द ही सर्व ब्रह्माण्ड का स्रोत है ।

`कला का कार्य आन्तरिक खुशी दिलाने का है। क्योंकि जब हमें भूख लगती है, तो हम खा लेते हैं, घूमने का मन होता है तो कहीं चले जाते हैं। परन्तु जब हमें अपनी आन्तरिक खुशी ही व्यक्त करनी है, तब हम संगीत का सहारा लेते हैं, इससे जो आन्तरिक सुख अर्थात् आनन्द की प्राप्ति होती है, वही रस है।`[9] इस रस के पनपने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, जो कि मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य होता है। रस व आनन्द भारतीय सौन्दर्यात्मक परम्परा के मुख्य केन्द्र हैं। अत: सितार वादन का सौन्दर्यात्मक मूल्य जानने के लिये पहले रस एवं आनन्द को समझना अनिर्वचनीय है।

संस्कृत शास्त्रियों ने काव्य के संदर्भ में रस का बहुत सूक्ष्मता से विचार किया है। इनमें से कुछ मुख्य विशेषताएं सभी कलाओं के लिए पूर्ण उतरती हैं। इस संबंध में सर्वप्रथम ध्यान देने योग्य है कि रस को भाव या संवेग से नहीं मिलाना चाहिये। भाव या संवेग की प्रवृत्ति क्रियाशील हो जाना है --

`भाव इति भाव:`

भाव का अर्थ है `हो गया`, न कि `होना`। इसी प्रकार संवेग का अर्थ है, `दिमाग से बाहर आ जाना`, यह वह भावना है जिसकी प्रवृत्ति बहाव में आना ही होती है। जिस प्रकार भय का संवेग किसी व्यक्ति को भाग जाने के लिये प्रेरित करता है तथा गुस्से का संवेग कुछ अपशब्द बोलने को प्रेरित करता है। इसी प्रकार जब हमें दु:ख का संवेग आता है, तब हम सिसकियां भरने लगते हैं तथा अगर दु:ख ज्यादा हो तो हमें रोना भी आ जाता है परन्तु जब किसी संवेग को अपने में रोक लिया जाए तथा उसका खाने के टुकड़े की तरह धीरे-धीरे स्वाद लिया जाय, तब हमें रसानुभूति होती है। जिस तरह खाने के टुकड़े को हम अपनी जबान से घुमा-घुमाकर उसका स्वाद ग्रहण करते हैं, तथा खुशी महसूस करते हैं, उसी प्रकार एक कलाकार का संवेग खाना हो जाता है तथा उसकी चेतन वृत्ति जबान हो जाती है, इससे जो अनुभव प्राप्त होता है,

उसे रस कहते हैं। संस्कृत शास्त्रकारों ने चर्वण शब्द तथा आस्वाद, जिसका अर्थ है 'स्वाद लेना', को रस के पर्यायवाची के रूप में ही प्रयोग किया है। प्रणववाद में सत्य ही कहा गया है --

' भाव सामर्थ्यां रस: । '

संवेग को बुलाना और उसका स्वाद लेना ही रस है।[७] इसी प्रकार डा० भगवानदास अपनी पुस्तक 'Science of the emotion' में कहते हैं[८] कि --
"Its business is to call up an emotion and then hold it in, so that its correspondent feeling of pleasure is tasted at leisure"

एक संवेग दु:ख या सुख का भी हो सकता है, परन्तु रस हमेशा आनन्द या खुशी की ही अनुभूति देता है। इसी संदर्भ में बालबोधिनी कहते हैं, 'लोक-हर्ष-शोक-करुण भयो हर्ष शोक वेबा ही जयते'। अत्र पुन: 'संवेभय: एव तेभ्या सुखमित्यालौकिकात्वाम।' अर्थात् सामान्य जीवन के अनुभव में हमें खुशी से सिर्फ खुशी, दु:ख से सिर्फ दु:ख ही मिलता है, परन्तु रस के संदर्भ में हर संवेग से खुशी ही मिलती है, यही रस की विशेषता है। संगीत के जादूगर प्रभाव से हर संवेग को खुशी के अनुभव में बदल दिया जाता है।[७]

सत्य यह है कि संगीत किसी संवेग को निरूपित नहीं कर सकता। परन्तु यहां यह विचारणीय है कि फिर संगीत संवेग के कौन से अंग को प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। इसका स्पष्ट उत्तर यही हो सकता है कि संगीत संवेग के मुख्य गुण को निरूपित कर सकता है। संगीत अपनी गति, धीमापन, उतार-चढ़ाव इत्यादि के द्वारा उन मनोभावों को ही दर्शा सकता है, जो मानसिक तरंगों के साथ संलग्न हैं। परन्तु तरंगें सिर्फ संवेग की सहवर्ती हैं, संवेग नहीं है। लेकिन भ्रमवश ऐसा कहा जाता है, कि संगीत भावना को ही प्रकट कर देता है। सत्य तो यह है कि संगीत सिर्फ

ध्वनि की तरंगों को ही दर्शाता है, तथा कोई भी भाव का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, जिस प्रकार वाद्य संगीत की कोई भी रचना भय, गुस्सा या प्रेम को प्रतिपादित नहीं कर सकती । क्योंकि इन समस्त भावों एवं स्वर-संयोजन में कोई युक्तिसंगत संबंध नहीं होता तथा संगीत सिर्फ ध्वनि तरंगों के तत्व को ही सूक्ष्मता से व्यक्त कर सकता है, इसलिये यही वह तत्व है, जो संगीत एवं भावनाओं में समान है । इस प्रकार जो संगीत द्वारा महसूस की जा सकती हैं, वह भावनाएं ही होती हैं तथा इन्हीं के द्वारा कोई भी प्रभाव उत्पन्न होता है ।[६]

रंगों की तरह आवाज़ भी मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ भावों से जुड़ी हुई है । जिस प्रकार हर रंग की अपनी एक विशेषता है, जिसकी वजह से चित्रकार भी उन्हें यथास्थान प्रयोग करता है, उसी प्रकार एक विशेष आवाज़ का विशेष प्रकार की भावना से सम्बन्ध रहता है, जिसे एक संगीतकार यथास्थान प्रयोग कर सकता है । यही कारण है कि संगीतकार में कार्यक्रम प्रस्तुत करने से पहले इन भावनाओं का होना आवश्यक हो जाता है तथा उन्हीं भावनाओं को श्रोता द्वारा ग्रहण करना अति आवश्यक हो जाता है ।[६] इसीलिये हमारे शास्त्रकारों ने इस मस्तिष्क की विशिष्ट परिस्थिति को तन्मय भाव या तन्मयता की संज्ञा दी है । इसी से रस की अनुभूति हो सकती है । इसी कारण प्राचीन संगीत शास्त्रकारों ने राग ध्यानों की रचना की थी । अभिनव गुप्त ने भरत के नाट्यशास्त्र पर टिप्पणी करते हुए रसास्वाद को तन्मयभाव ही कहा है ।

रस की पूर्ण अनुभूति के लिए सुनने वालों को अपने अस्तित्व को भुलाकर एकाग्र श्रोता की तरह अपनी भावनाओं का अनुभव करना पड़ेगा । हमारे कलाशास्त्रियों के अनुसार इस सधर्मी क्रम के बिना वास्तविक रस की अनुभूति नहीं हो सकती । केवल रस का आभास ही मिलेगा । पूर्ण रस की अनुभूति एक 'स्थितिपर्जन' व्यक्ति ही कर सकता है । 'स्थिति पर्जन' का अर्थ है एक व्यक्ति जिसने अपने मस्तिष्क पर इतना काबू पा लिया है कि उसका मस्तिष्क उसके चारों तरफ हो रही समृद्धि या संकटों में

भी अपना संतुलन नहीं खोता और शान्त रहता है । कृष्ण व्यास ने भगवत् गीता के दूसरे अध्याय का अन्त निम्न श्लोक से किया है[१०] --

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।

उपर्युक्त श्लोक भगवान कृष्ण ने अर्जुन को स्थितिपर्जन्य का अर्थ बतलाने के लिये तथा ऐसा व्यक्ति संसार में किस प्रकार का व्यवहार करता है, यह समझाने के लिए कहा है । उपर्युक्त श्लोक में मानव मस्तिष्क की पानी से तुलना की गयी है । 'स्थिति-पर्जन्य मनुष्य' को एक समुद्र के समान माना गया है । जो कभी भी बह नहीं निकलता, चाहे उसमें कितनी ही नदियों का पानी डाला जाय । ना ही वह बरसात के न आने से सूखता ही है । वह अपनी जगह से भी नहीं हिलता, चाहे बड़े से बड़ा तूफान आ जाए । इतने संतुलित मस्तिष्क वाला व्यक्ति जब पूर्ण तन्मयता से संगीत को सुनता या बजाता है तो वह अपूर्व रस की अनुभूति को प्राप्त करता है । परन्तु एक सामान्य व्यक्ति जिसका मस्तिष्क थोड़े से पानी की तरह है, जो कूने से ही अशान्त हो जाता है, उसके लिए रस एक मस्तिष्क की अपसामान्य स्थिति ही है । जब यह व्यक्ति तन्मयता से किसी सांगीतिक रचना को सुनता है, तब इस सांगीतिक रचना के द्वारा उसके मस्तिष्क की विचार शक्ति से उस रचना में छिपे हुए विचार का रूप प्रतिष्ठित हो जाता है । इस विचार के आने से ही उसमें भावनाएं उजागर होती हैं तथा वह उनमें बह जाता है ।[११] यही उस व्यक्ति के लिए आनन्द अथवा रस की अनुभूति होती है । अस्थितिपर्जन्य कलाकार (जो सामान्य व्यक्ति ही है) को अपनी रचना में रस भरने के लिए अपरिमित भाव को लाना महत्वपूर्ण बताया गया है । इस भाव को निम्न उदाहरण से समझाया जा सकता है --

रवीन्द्रनाथ की एक कविता में कोई एक व्यक्ति पक्षी से पूछता है कि, `तुम अपने घोंसले में क्यों नहीं गाती हो, सिर्फ खुले आकाश में उड़कर ही क्यों गाती हो ?` पक्षी ने उत्तर दिया कि, ` जब मैं घोंसले में होती हूं, तब मुझे कहीं से भी गाने की प्रेरणा नहीं मिलती, परन्तु जब मैं स्वतंत्र होती हूं तथा खुले आकाश में भ्रमण करती हूं, तभी गाने की प्रेरणा मिलती है ।`

इसी प्रकार जब एक संगीतज्ञ अपनी परिधि को तोड़कर दूर चला जाता है तथा एक सार्वभौमिक स्तर तक पहुंच जाता है, तभी वह अपनी रचना में रसोत्पत्ति कर सकता है । इस स्थिति को हमारे कलाशास्त्रियों ने अपरिमित की संज्ञा दी है । कला कुछ मात्रा में पृथक्कीकरण चाहती है, या खुद के सीमित दायरे से निकल कर, सार्वभौमिक अनुभव में लुप्त हो जाना चाहती है, तभी एक संगीतकार द्वारा अपने संगीत में रस को भरा जा सकता है ।[७]

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि रस एक भिन्न प्रकार का अनुभव है जिसे सामान्य जीवन के अनुभव से नहीं समझाया जा सकता । इसीलिये हमारे शास्त्रियों ने इसे अलौकिक कहा है । यह एक आंतरिक अनुभव है । संगीत इन्द्रियों को माध्यम के रूप में प्रयोग करके, इन्द्रियों से भी दूर चला जाता है । इसीलिये `ममता` अपने काव्य प्रकाश में लिखते हैं कि यह `लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाण` से बिल्कुल भिन्न है तथा यह `लोकोत्तरस्वसामवेदान्` है । इसका अभिप्राय है कि रस की अनुभूति, लौकिक सामान्य अनुभवों से, जो हम इस संसार मेंप्रत्यक्ष या इन्द्रियों से प्राप्त करते हैं, उन सबसे बिल्कुल भिन्न है ।[७]

संगीत के स्वर की परिभाषा में ऐसे अक्षर आते हैं ; `श्रुत्यनन्तरभावी, स्निग्ध, अनुरणनात्मक तथा अन्तत: रक्तो रंजयति श्रोतृचित्तम्` । `स्निग्ध` का अर्थ है चिकना, समतल, जिसमें रूखापन न हो तथा खुशी प्रदान करने वाला । अनुरणना-

त्मक बजते हुए स्वर के विस्तार की ओर संकेत करता है तथा 'रक्तो रंजयति श्रोतृचित्तं' यह शर्त रखता है कि सांगीतिक स्वरों में सुनने वालों को खुश कर देने तथा उसको सौन्दर्यात्मकता देने की क्षमता संलग्न होनी चाहिये। 'रंजयति' शब्द में संस्कृत का रंज शब्द है जिसका अर्थ है रंग भरना, खुश करना तथा आत्मविभोर कर देना। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि रंज तथा उससे उत्पन्न शब्द जैसे रक्ति, रन्जन, रन्जक, राग इत्यादि संगीत के सौन्दर्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। अत: यह शब्द संगीत की परिभाषाओं में बार-बार आते हैं। उदाहरणार्थ 'गीतम्' शब्द जो कि हमारे संदर्भ में गायन तथा वाद्य संगीत के लिए प्रयोग किया गया है, उसे निम्न प्रकार परि - भाषित किया गया है [१२] :--

रंजक: स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते।

एक क्रमिक स्वर-समूह को ही गीत कहते हैं।

यहां एक प्रश्न यह उठता हैकि जब एक स्वर में माधुर्य तथा खुशी प्रदान करने के गुण उपस्थित हैं तो स्वर-समूह में यह गुण होने ही चाहिये। परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि दो या अधिक स्वर जब एक साथ या एक के बाद एक छेड़े जाते हैं तो वह एक आनन्दमय प्रभाव तभी देते हैं, जब उनकी आवृत्तियों का अनुपात एक छोटी संख्या का खण्ड हो। यह वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध किया जा चुका है। सत्य तो यह है कि जितना छोटा खण्ड होगा, उतना ही मधुर प्रभाव उत्पन्न करेगा। उदाहरणत: स-ग और स-प एक मधुर स्वर-संगतियां हैं क्योंकि इनकी आवृत्तियों का अनुपात ४ :५ और ४:६ है। स-रे की स्वर-संगति एक मधुर प्रभाव नहीं व्यक्त कर पाती क्योंकि उसकी आवृत्तियों का अनुपात ६:८ है (ध्यान रहे ये दोनों संख्याएं बड़ी हैं।)। [१३] गणित के हिसाब से सात स्वरों के ३५००० क्रमिक स्वर समूह निकल सकते हैं परन्तु इनमें से कुछ ही स्वर-समूह ऐसे हैं जो सौन्दर्यात्मक दृष्टि से मधुर हैं। इन्हें राग की

संज्ञा दी गयी हैं जिनमें से साधारणत: १५०-२०० ही प्रचलित हैं। सच तो यह है कि रस को राग का प्रमुख गुण माना गया है।[१४] यही कारण है कि रंजकत्व गुण को बार-बार दोहराया गया है। क्योंकि अगर स्वर-समूह में स्वर, चुनाव-क्रम या मात्रा में न हो तो वह अरंजक बन जाता है। यह औचित्य के सौन्दर्यात्मक सिद्धान्त को प्रतिद्योपित करता है। यह कथन है :--

"न हि अनौचित्यादृते किमपि रसभंगस्य कारणम्"

जिसका अर्थ है कि अनौचित्यता के समान कोई भी रस को भंग नहीं कर सकता। यह एक सार्वभौमिक सौन्दर्यात्मकता का सिद्धान्त है, जो किसी भी कला के लिये सही उतरेगा। मतंग की 'बृहद्देशी' में देशी संगीत की नींव इस प्रकार डाली है :--

देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदय रंजकम।

जो देश के विभिन्न प्रान्तों के व्यक्तियों की रुचि के अनुसार आनंद प्रदान कर सके।[१२] इस आधार पर ही रागों की सृष्टि की गयी। हमारे संगीतशास्त्रियों ने राग को इस प्रकार परिभाषित किया है :--

रज्यति इति राग:

जिसका अर्थ है 'जो खुशी प्रदान कर सके, वही राग है।[१४] राग को पूर्णरूपेण निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :--

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित:।
रंजको जनचित्तानां स राग: कथितो बुधै:।।

इसका अर्थ है, एक विशेष क्रम जो संगीत की आवाज़ के संगठन के साथ संवारा गया हो, जिसमें स्वरों के विभिन्न विस्तृत लगाव हों तथा जिसमें मनुष्य को खुश करने की क्षमता हो, उसे राग कहते हैं। राग के सिद्धान्त में यह मोह या मोहित करने वाला गुण ही सौन्दर्यात्मक है।[१२]

स्वर, राग में रस-निष्पत्ति के तत्वों में सर्वप्रथम व सर्वप्रमुख तत्व है। संगीत के सप्त स्वरों का आधार है, 'बाईस श्रुतियां'। इन बाईस श्रुतियों के अन्दर ही सात शुद्ध एवं पांच विकृत स्वरों का विभाजन किया गया है। प्राचीन आचार्यों ने अपनी भाव दृष्टि से श्रुतियों को जांचा, परखा एवं बताया कि हर श्रुति का अपना भाव एवं रस है। श्रुतियों के कारण ही स्वरों के अलग-अलग रस हैं। जैसे कि शास्त्र में बताया गया है कि 'स' स्वर वीररस को उद्घाटित करता है जिसका कारण 'स' स्वर की चार श्रुतियां (तीव्रा, कुमुदती, मन्दा, छन्दोवती) हैं। यह भी अपने एकाकी रूप में वीर रस के भाव को प्रकट करती हैं। इन्हीं श्रुतियों के कारण 'स' को वीररस-प्रधान माना गया है। 'संगीतसारामृतम्' में रस के आधार पर श्रुतियों का पांच जातियों में वर्गीकरण किया गया है। हर जाति की श्रुतियों का अलग-अलग रस एवं उच्चारण का ढंग है।

१. दीप्ता जाति : वीर व रौद्र रस, बुलन्द उच्चारण,
   श्रुतियां : तीव्र, रुद्र, वज्रिका, उग्रा।

२. आयता जाति : शान्त रस, दीर्घ उच्चारण,
   श्रुतियां : कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी।

३. करुणा जाति : करुण रस, कम्प सहित उच्चारण,
   श्रुतियां : दयावती, आलापिनी, मदन्तिका।

४. मृदु जाति : श्रृंगार रस, बुलन्द उच्चारण,
   श्रुतियां : मन्दा, रति, प्रीति, क्षिति।

५. मध्या जाति : तटस्थ, मध्यम, उच्चारण,
   श्रुतियां : छन्दोवती, रजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी।

इस प्रकार इन पांच जातियों की श्रुतियों के अपने-अपने रस निश्चित किए गए और उस पर स्थित स्वर भी उन्हीं रसों को व्यक्त करते थे। विद्वानों का मत है कि इनमें से सजातीय श्रुतियों के मिश्रण से अधिक रस की सृष्टि हो सकती है। श्रुतियों के संयुक्त रूप, स्वर को सुनने से एक सामान्य व्यक्ति को निम्न प्रकार के सौन्दर्य का अनुभव होगा (ध्यान रहे सौन्दर्य और रस समानार्थी हैं)।[१५] (यहां यह भी आवश्यक हो जाता है कि विभिन्न स्वरों की क्या प्रकृति है, जिसके कारण वह पृथक्-पृथक् प्रभाव डालने से समर्थ होते हैं।) सप्तक का प्रथम स्वर षाड्ज होता है, यह अचल है तथा अपना स्थान आरम्भ में ही निश्चित कर लेता है। इस षाड्ज को वादन में आद्यन्त इसी प्रकार से लगाया जाता है। संगीत के सभी पहलुओं (गायन, वादन) में यह स्वर बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस षाड्ज पर ही सप्तक के अन्य छह स्वर आश्रित होते हैं, इसी कारण इस स्वर का षाड्ज नामकरण किया गया है जिसका अर्थ 'छह का स्रोत' है। यह स्वर अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत स्थिति में है जिस प्रकार योगी अपनी यौगिक तन्मयता की स्थिति में होता है तथा उसको किसी से कोई आसक्ति नहीं होती है।

सप्तक का दूसरा स्वर कोमल रिषभ है। यह मानवीय अर्द्धसुप्तावस्था की अवस्था में होता है, परन्तु निद्रा भंग होने के कारण यह थोड़ा सुस्त, रूखा तथा दु:खी भाव दर्शाता है।

तीसरा स्वर शुद्ध रिषभ है। यह पूर्ण जागृतावस्था का द्योतक है। परन्तु क्योंकि इसे इसकी इच्छा के विरुद्ध जगाया गया है, इसलिये यह थोड़ा षाड्ज की तरफ झुका हुआ होता है। यह हमें उस मनुष्य के आलस्य को याद दिलाता है, जो अपनी नींद के खुलने पर उबासियां ले रहा होता है।

चौथा स्वर कोमल गंधार है । यह घबराया हुआ, नि:सहाय तथा व्यथावान स्थिति में है । परन्तु यह एक उदास सुन्दर नारी के समान ही लुभावना होता है ।

पांचवा स्वर शुद्ध गंधार है । यह काफी जिज्ञासु एवं चैतन्य स्थिति का आभास कराता है तथा यह एक चुस्त बालक की तरह ही है जो बार-बार कई प्रश्न पूछता है । यह प्रसन्न एवं चंचल व्यवस्था का आभास दिलाता है तथा वातावरण को तरोताज़ा रखता है ।

छठा स्वर शुद्ध मध्यम है । यह गंभीर, विद्वान एवं शक्तिशाली स्वर है जिसे अगर मौका मिलता है तो यह सब स्वरों पर आधिपत्य जमाकर पूरे वातावरण पर छा जाता है ।

सातवां स्वर तीव्र मध्यम है । यह काफी संवेदनशील, चंचल तथा सुखदायी है जो आधार स्वर बनने की इच्छा रखता है । क्योंकि यह काफी चंचल प्रकृति का स्वर है, अत: यह अपने पड़ौसी पंचम स्वर को चिढ़ाने से कभी नहीं चूकता ।

आठवां स्वर पंचम है । यह बहुत तेजस्वी तथा अचल स्वर है तथा किसी से प्रभावित नहीं होता । पंचम बहुत खुशमिज़ाज़ तथा षड्ज की अर्धांगिनी के समान ही है । इसमें एक नवविवाहिता के समान अति सुन्दर तथा गौरवपूर्ण मुस्कान है ।

नवां स्वर कोमल धैवत का है जो अति शोकप्रद एवं करुणा से भरपूर है । दसवां स्वर शुद्ध धैवत है, इसका स्वभाव एक पहलवान की तरह है जिसमें कि सभ्यता की कमी है तथा जो हमेशा कामुकता पर धावा बोलने की स्थिति में रहता है ।

ग्यारहवां स्वर कोमल निषाद है, जो विनम्र, खुश तथा प्रिय लगने वाला है, हालांकि थोड़ा करुण भी है । कभी-कभी यह स्वर कठोर मुखाकृति भी अपना लेता है । मैत्रिक स्वभाव के कारण यह सभी भावनाओं जैसे श्रृंगार, करुण, वीर तथा शान्त के साथ भलीभांति मिल जाता है ।

बारहवां स्वर शुद्ध निषाद है । यह सप्तक का अन्तिम स्वर है । इसकी प्रवृत्ति भाले की नोक से छेद कर अन्दर घुस जाने के समान है । यह दु:खभरी करुण आवाज़ की तरह चिल्लाता है तथा श्रोताओं को बेचैन कर देता है जिसकी वजह से श्रोता षड्ज के लिए अत्यधिक लालायित रहते हैं ।

अन्त में तार सप्तक का षड्ज आता है । इसकी आंदोलन संख्या मूल षड्ज से दुगनी होती है । यह मूल षड्ज जैसा ही भाव दर्शाता है तथा यह राग के भाव का चरमोत्कृष्ट बिन्दु है ।[१४] इस स्थिति पर राग का सौन्दर्य उभर आता है तथा श्रोता पूर्णत: राग का आनंद लेने में सक्षम होता है । इस स्थिति में वह राग के साथ स्वयं को एकाकार कर लेता है ।

परन्तु कुछ विद्वान उपर्युक्त स्वर-भाव को मान्य नहीं मानते हैं । उनके अनुसार स्वर मात्र एक ध्वनि की तरंग है जिसकी एक निश्चित आवृत्ति होती है । परन्तु भारतीय संगीत में षड्ज की निश्चित आवृत्ति नहीं है । इसलिये स्वरों का निश्चित रस भी अर्थरहित है, क्योंकि एक व्यक्ति की एक समय में एक निश्चित ध्वनि की आवृत्ति रिषाभ हो सकती है तथा दूसरे समय वही ध्वनि षड्ज या कोमल गंधार भी हो सकती है । पुराने शास्त्रों में जब यह भाव स्वरों के लिये निश्चित किये गये, तब हो सकता है कि षड्ज की एक निश्चित स्थिति रही हो ।[१६]

परन्तु यह कथन तर्कसंगत नहीं लगता । क्योंकि प्राचीन काल से ही विभिन्न वाद्यों में आधार स्वर के तार को रखने की प्रथा चलती आ रही है । इससे यह स्पष्टत: कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में भी षड्ज की स्थिति निश्चित नहीं थी तथा कोई भी व्यक्ति किसी भी ध्वनि को षड्ज मानकर गा-बजा सकता था । इसी कारण-वश तानपूरे का प्रयोग काफी महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि यह कलाकार एवं श्रोता को न सिर्फ आधार स्वर का ध्यान कराता रहता है, बल्कि यह तन्मय व्यक्तियों को विक्षकरता

है कि वह अपनी भावनाओं की तरंगों को उस निश्चित आधार स्वर पर आधारित कर लें ताकि वह रस की अनुभूति कर सकें।

जैसाकि पहले वर्णन किया जा चुका है कि संगीत में कोई भाव नहीं होता, तथा संगीत का भावों से सिर्फ तरंगों के माध्यम से ही रिश्ता है।[६] हमारे मस्तिष्क में प्रत्येक भाव के लिए निश्चित तरंग है। जब उस ध्वनि की तरंग मानव सुनता है, तब उसका मस्तिष्क उस तरंग की आवृत्ति को परखकर निश्चित भावों को उजागर करता है तथा स्वरों में छिपे भावों का अनुभव भी करता है। संगीत में जहां षड्ज की कोई निश्चित स्थिति नहीं है, वहां वादक तानपूरे पर बार-बार आधार स्वर बजाकर श्रोता के मस्तिष्क को उस आधार स्वर पर ढालने के लिए मजबूर करता है। (यही तन्मयता की स्थिति है) अत:मस्तिष्क विभिन्न आधार स्वरों में बजाए गए विभिन्न स्वरों में भी एक समान भाव को ढूंढ लेता है। यह स्थिति वैसी ही है, जैसे एक मानव बच्चे के रोने को, रोना ही दर्शाता है, रोने को हंसना नहीं दर्शाता।

अत: यह सिद्ध हो जाता है कि प्रत्येक स्वर की अपनी पृथक प्रवृत्ति होती है। परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि स्वरों के भावों का सिद्धान्त हमारे प्राचीन संगीत शास्त्रियों ने सिर्फ एक सिद्धान्त मात्र के लिए ही बनाया है। इस सिद्धान्त की सत्यता की वजह से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि इस सिद्धान्त को बनाने से पहले अनेकों प्रयोग किए गए होंगे। अत: इन सिद्धान्तों को दुबारा से परखना वैज्ञानिक शब्दों में समय को व्यर्थ गंवाना ही है। जिस प्रकार विज्ञान के जब कुछ सिद्धान्त बन जाते हैं, तथा उनकी सत्यता को परख लिया जाता है तब बाद में उन सिद्धान्तों को प्रयोग करते समय उनको सत्य मान ही लिया जाता है न कि उनकी सत्यता को सिद्ध करने के लिए दुबारा प्रयोग किया जाता है।

उपर्युक्त स्वर सिद्धान्त सिर्फ एक सिद्धान्त मात्र ही है जिसका क्रियात्मक मूल्य नहीं है, परन्तु किसी राग में छिपे भावों का पूर्व अनुमान लगाने के लिए यह

सिद्धान्त उपयोगी सिद्ध होते हैं । लेकिन यही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विभिन्न स्वरों का संयोजन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । एक स्वर की भावना चाहे कुछ भी हो, परन्तु दूसरे स्वरों के साथ प्रयुक्त किए जाने पर उसका प्रभाव भी भिन्न हो जाता है । यथा दो स्वर संगतियां हैं :-- (१) प म ग रे, (२) प ग रे । प्रथम स्वर समूह में गंधार नाजुकता दर्शाएगा जबकि दूसरे स्वर समूह को बजाने पर वही गंधार मध्यम के प्रयोग से वंचित होने पर, वीरता की भावना उत्पन्न करता है । इस प्रकार स्वरों के तनिक हेर-फेर से ही उसके रस, प्रभाव या सौन्दर्य में भिन्नत्व आ जाता है । इसी प्रकार एक स्वर को आन्दोलित करने पर भी उसकी भावना की मात्रा में फर्क आ जाता है । इसी प्रकार एक-एक श्रुति के प्रयोग की भिन्नता भी राग के भाव को बदल देती है । इस प्रकार एक ही प्रकार के विभिन्न राग, जिनमें एक समान स्वर लगते हैं, उनके भावों की भिन्नता की बारीकियों को भी दर्शाया जा सकता है । इसके साथ ही वादन में वादी, संवादी, विवादी एवं अनुवादी स्वरों का प्रयोग भी उसके भाव को बदल देता है । परन्तु, फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि जिन रागों में शुद्ध मध्यम स्वतंत्र एवं मुख्य भूमिका अदा करता है यथा मालकौंस, ललित, केदार, बागेश्री, दुर्गा इत्यादि, यह प्रशान्त एवं गम्भीर भावों को उजागर करते हैं । इनमें से बागेश्री करुण रस की अनुभूति कराता है । क्योंकि इसमें शुद्ध धैवत तथा कोमल निषाद प्रयोग किए जाते हैं । जिन रागों में पंचम स्वर प्रधान स्वर होता है, वे राग शान्तिप्रधान होते हैं तथा श्रृंगार रस की उत्पत्ति करते हैं । जिस प्रकार राग बागेश्री, काफी समान स्वर के ही होते हैं पर काफी राग श्रृंगार रस की उद् - भावना करता है क्योंकि इसमें पंचम की प्रबलता है । इसी प्रकार शुद्ध गंधार भी श्रृंगार रस कोही उत्पन्न करता है परन्तु पंचम से कम । खमाज में गंधार, पंचम प्रधान स्वर होते हैं तथा यह श्रृंगार रस को प्रतिपादित करता है परन्तु आलाप करुण रस ही उत्पन्न करेगा क्योंकि आलाप में नी का प्रयोग होता है । कोमल धैवत प्रयोग किये

जाने वाले राग करुण रस का अनुभव कराते हैं तथा जब उनमें कोमल धैवत की सहायता के लिए कोमल रिषभ तथा कोमल गंधार का भी प्रयोग किया जाय तो करुण रस का प्रभाव और अधिक हो जाता है, राग बिलासखानी तोड़ी एवं कोमल रिषभ आसावरी आदि राग इसी श्रेणी में आते हैं। यह करुण रस का संचार करते हैं। इस प्रकार सितार वादन में शान्त, करुण एवं श्रृंगार रस के साथ ही अद्भुत रस भी एक मुख्य भूमिका अदा करता है। इसका वादन किसी भी राग में विचित्रता का समावेश करके दिखाया जा सकता है। यथा किसी भी राग में उसके चलन के अनुसार बहुत ही द्रुत गति से बाजा दें अथवा कभी मंद्र, कभी तार सप्तक में तथा फिर मंद्र सप्तक में बजाकर इस अद्भुत रस के भाव को जागृत किया जा सकता है।

कुछ राग ऐसे हैं, जो हमारी विशेष प्रकार की वृत्ति से जुड़े हुए हैं। यथा राग ललित प्रातःकालीन भक्तिप्रधान राग है, भैरव को तपस्वी शिव से जोड़ा गया है, सारंग का प्रभाव दोपहर में ठंडक प्रदान करने वाला माना गया है, बसंत पूर्ण हरियाली का द्योतक है, मारवा विराग दर्शाता है तथा मल्हार गरज, बरसात एवं वायु के वेग को दिखाता है।

इस प्रकार संगीत के माध्यम से जिन चार रसों की अनुभूति होती है,[१४, १७-१९] इनकी मात्रा कई विषयगत कारणों पर भी निर्भर करती है। कुछ मनोवैज्ञानिक तत्व जो कि पसंद या नापसंद को निर्धारित करते हैं तथा जो एक संगीतकार एवं श्रोता पर भी अपना प्रभाव डालते हैं, वह निम्न प्रकार हैं :[२०]--

(१) परिपक्वता

इसके अन्तर्गत प्रारम्भ में एक बच्चा जो सभी प्रकार की आवाज चाहे वह किसी भी वाद्य की हो या कंठ की वह सभी आवाज़ों के साथ प्रतिक्रिया करता है, परन्तु जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, वह कुछ ही ध्वनियां जो उसकी दृष्टि में सांगीतिक हैं, उन्हें ही सुनना या व्यक्त करना पसंद करता है तथा जो उसकी दृष्टि में सांगीतिक

नहीं हैं, वह उन्हें नहीं अपनाता । इस प्रकार संगीत का सौन्दर्यात्मक मूल्य यथा-आयु ही होता है । इसका मुख्य कारण आन्तरिक परिपक्वता की विभिन्न स्थितियां ही हैं ।

(२) प्रशिक्षण

मस्तिष्क मे विकास की क्रिया प्रशिक्षण के द्वारा क्रमबद्ध, शीघ्र तथा अधिक की जा सकती है।जबकि प्राकृतिक देन के साथ प्रशिक्षण भी होता है तो पक्के स्वर, मधुर स्वर, लयात्मकता या विस्तार क्रम में सुदृढ़ता एक स्थिति से दूसरी स्थिति में शीघ्रता से परिवर्तित होती है । इस प्रकार प्रशिक्षण द्वारा श्रोता एवं शिक्षक दोनों ही लाभान्वित होते हैं क्योंकि जहां शिक्षक अपने कार्यक्रम के समय अपने प्रशिक्षण के अनुभव से श्रोताओं की रुचि का वादन प्रस्तुत कर सकता है, ठीक उसी प्रकार श्रोता भी प्रशिक्षित होने के कारण उस कलाकार के वादन पर यथोचित टिप्पणी करने में भी सफल होता है ।

(३) प्रतिभाशील

संगीत विधा एक ईश्वरीय देन है जो कि परम्परागत होती है । इस तथ्य को हम समान कक्षा के छात्रों के वादन में बहुत आसानी से देख सकते हैं, क्योंकि इन सब छात्रों को एक ही शिक्षक द्वारा, समान रूप से शिक्षण दिया जाता है, परन्तु उसके बाद भी कोई छात्र लय के काम में, कोई स्वर लगाव में तो कोई सभी चमत्कारों को बहुत ही कुशलता के साथ व्यक्त करने में प्रवीण होता है । इन सबका कारण उनकी प्रतिभाशीलता की भिन्नता ही है ।

(४) आस्वादन

कलाकार की निपुणता का अंकन करने के लिए उसका आस्वादन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । सभी सौन्दर्यात्मक तत्वों का मूल्य मानव के आस्वादन पर

निर्भर करता है । यह सत्य है कि स्वाद धीरे-धीरे बदलता रहता है, परन्तु फिर भी किसी संगीत में सौन्दर्यात्मक तत्वों को पहचानने के लिए आस्वादन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

(५) वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परख

जिस प्रकार, एक बाग में लगे फूल को देखकर एक सामान्य व्यक्ति खुश होगा एवं उसके महत्व को समझेगा, परन्तु अगर वहां उस व्यक्ति की जगह वनस्पतिविज्ञान-शास्त्री आ जाय, तो वह उस फूल का अत्यन्त सूक्ष्मता से निरीक्षण करेगा तथा उसके गूढ़ महत्व को भी जानेगा । इस प्रकार वह वनस्पति विज्ञान शास्त्री एक सामान्य व्यक्ति से अधिक उस फूल का आनंद लेगा जबकि इन दोनों में संवेग की मात्रा एक समान ही होती है । यही संगीत में होता है यथा एक सामान्य व्यक्ति सितार - वादन में कुछ आनन्द तो ले सकता है, परन्तु उसके गूढ़ रहस्य एवं सौन्दर्य को उतना नहीं जान सकता, जितना कि एक धुरन्दर संगीतज्ञ जानता है ।

(६) सौन्दर्यात्मक मन:स्थिति

संगीत को चिकित्सा के लिए प्रयोग करने में एक कठिनाई यह भी होती है कि श्रोता अनुकूल मानसिक स्थिति में, संगीत को ग्रहण करने वाला तथा उसकी आवश्यकता को समझने वाला होना चाहिये । इस प्रकार अगर संगीत को चिकित्सा के लिये प्रयोग करना होता है तो बीमार व्यक्ति की मन:स्थिति के अनुसार ही संगीत की रचना करनी पड़ती है । यही सिद्धान्त सामान्य जीवन में भी पूर्ण उतरता है । हमारे पृथक-पृथक परीक्षण, शिक्षण, आस्वाद तथा अनुभव होते हैं जो संगीत को ग्रहण करने में अत्यधिक प्रभाव डालते हैं । लेकिन यह सभी तत्व दिनों-दिन बदलते रहते हैं । इसलिये यह सब रसानुभूति के लिए विशिष्ट महत्व रखते हैं ।

(७) आलोचनात्मक दृष्टिकोण

कलाकारों की तरह एक आलोचक भी स्वयं को दो भिन्न दृष्टिकोणों में ढाल सकता है। पहला विश्लेषणात्मक, दूसरा-विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण होता है। जो विश्लेषणात्मक आलोचक होगा, वह उसकीसूक्ष्मतम विशेषताओं को सम्मुख रखकर उसका सौन्दर्यांकन करेगा जबकि अविश्लेषणात्मक आलोचक संगीत के सामान्य तत्वों को सुनकर ही निर्णय दे देगा। दोनों ही दृष्टिकोण अपनी अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं। हालांकि इन दोनों से भिन्न मात्रा में रसोत्पत्ति होती है।

उपर्युक्त सभी कारणों की मात्रा एक विशेष व्यक्ति में उसकी रसानुभूति की क्षमता पर प्रभाव डालती है और इन्हीं सब विषयों पर दृष्टिपात करके ही निर्णय का अंकन करना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण में रस तथा इसको अनुभव करने एवं उत्पन्न करने के लिए मुख्य शर्तों का तथा विभिन्न रागों में विभिन्न रस तथा विषयगत तथ्यों का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है। हर वाद्य के कुछ विशेष सौंदर्यात्मक तत्व होते हैं। सितार में भी इसी प्रकार यथासमय विभिन्न सौन्दर्यात्मक तत्वों को डाला गया। जिसकी वजह से आज इसका वादन सर्वश्रेष्ठ बन गया है। इन सौन्दर्यात्मक तत्वों का प्रयोग विभिन्न रागों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाना चाहिये। इसका प्रयोग कहां-कहां उचित है, यह निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक जांच की मूल आवश्यकताओं पर काफी निर्भर करता है। अत: सितार के सौन्दर्य के लिये भी इन्हीं मूल आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जा रहा है।

सांगीतिक सौन्दर्य की मनोवैज्ञानिक जांच के लिए मूल आवश्यकताएं[२१]

पहला तथा मुख्य गुण यह है कि यह जांच सब अनुपयुक्त विज्ञान के मूल सिद्धांतों, जिन्हें सर्वव्यापी मान्यता प्राप्त हो चुकी है, उनके अनुरूप ही होने चाहिये। इन मौलिक आवश्यकताओं में विफलता को निर्णय में त्रुटि का स्रोत ही मानना चाहिये।

(१) विशेषज्ञ-निरीक्षक या निर्णायक

किसी भी स्वर समूह को परखने के लिए विशेषज्ञ निर्णायकों का क्रमबद्ध निर्णय लेना आवश्यक है। यह निर्णायक वही होने चाहिये जिनकी सामर्थ्य एवम् उपलब्धि सर्वोच्च हो। इस प्रकार हमारे निर्णय सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों पर पूर्णत: उतरेंगे जिनका इस प्रकार का व्यक्तित्व एवं अभ्यास है। परन्तु यही निर्णय सबसे ठोस मत दे सकते हैं। यह निर्णय भावनात्मक मूल्यों पर भी निर्भर करेगा। यथा-- `मुझे यह उससे ज्यादा पसंद आया` (जब दो एक ही प्रकार के वादन का निरीक्षण किया जा रहो हो।) सब जांचों को आसान करके निर्णय को आसान किया जा सकता है ताकि एक समय में निर्णय एक ही कारक पर निर्भर हो। उदाहरणत: क्या राग विशेष में शुद्ध `म` अच्छा लगेगा या तीव्र `म`। ज्यादा से ज्यादा समर्थ निर्णायकों का निर्णय लेना चाहिये ताकि एक निर्णय को सर्वमान्य बनाया जा सके। सौन्दर्यात्मक मूल्यों को परखने वाला निर्णायक तभी समर्थ होगा जब वह एक नियंत्रण जांच की परिस्थिति में अपने निर्णय को तर्क दे सके। तर्क करने की क्षमता से एक मत को ढूंढने में सहायता मिलती है। इस प्रकार निर्णायक, वादन सामग्री एवं वादक की समर्थता महत्वपूर्ण है।

इस सत्य को भी ध्यान में रखनाचाहिये कि जो वादन एक व्यक्ति को सुन्दर लगता है, दूसरे को न लगे। इसका कारण वातावरण, अनुवांशिक आदि हैं, जो पहले बताए जा चुके हैं। इसी प्रकार एक व्यक्ति को एक मन:स्थिति में जो सुन्दर लगता है, वह दूसरी मन:स्थिति में असुन्दर भी लग सकता है। इसलिये एक निर्णय लेने से पहले कई-कई बार जांच को दोहराना चाहिये।

(२) उचित अलंकरण का प्रयोग

कोई अलंकरण जो उस राग के वादन में शोभायमान हो तथा लगता हो, उसे कई बार लगाना चाहिये ताकि निरीक्षक उसे समझकर सही निर्णय दे सके। अत: अनुचित अलंकारों का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

(३) सिद्धान्त

सौन्दर्यात्मक जांच की कुछ परिकल्पनाएं होती हैं। ये परिकल्पनाएं या तो साहित्यिक तौर पर पूरी तरह मान्य हो सकती हैं या ये सिर्फ भावनाएं हो सकती हैं जो तर्कपूर्ण होती हैं। परिकल्पनाओं के बिना जांच व्यर्थ में समय नष्ट करना होती है। इस प्रकार किसी भी प्रशिक्षित वैज्ञानिक या संगीतशास्त्री के पास कुछ ठोस परिकल्पनाएं होती हैं। उदाहरणार्थ स्वरों में सौन्दर्य होता है। कोमल-तीव्र स्वरों, मंद्र तार स्वरों में एक भिन्न प्रकार का रस होता है आदि। इन सब पर आधारित होकर, प्रशिक्षित व्यक्ति बहुत ही शीघ्र किसी भी रचना का रस बता देता है तथा उस सौन्दर्यात्मक मूल्य को एक नाम या संज्ञा दे दी जाती है। उदाहरणार्थ - एक मिस्त्री फ्रिज, टेलीविज़न आदि देखकर बता देता है कि इसकी क्या खूबी है या इसमें क्या कमी है। फिर, अपने अनुभव या प्रशिक्षण के आधार पर वह मिस्त्री अपने निर्णय को एक ठोस आधार दे पाता है।

परन्तु जांचकर्ता का मुख्य कार्य यह भी होता है कि वह अपनी सब कल्पनाओं को पूरी तरह परख ले। उदाहरणार्थ एक स्वर मुख्य रचना में क्या भूमिका निभा रहा है? इस प्रकार कलाकार को इन सब बातों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, तभी वह अपने कार्यक्रम में इन सब सिद्धान्तों का अच्छा प्रयोग करके उसे रसपूर्ण बना लेता है।

प्रयोगशाला में जांच-पड़ताल करने वाला उन सिद्धान्तों को लेकर एक-एक परिवर्तनशील कारक को बदल-बदल कर अपनी परिस्थिति में उन सिद्धान्तों द्वारा सौन्दर्यात्मकता का मूल्यांकन करता है जिससे एक समर्थ कलाकार को इन सब स्थापित तथ्यों का पूर्ण ज्ञान हो जाता है तथा वह एक रचना में सौन्दर्यात्मक तत्वों का कम समय में मूल्यांकन कर लेता है। इस प्रकार उपर्युक्त जांच के नियमों को ध्यान में रखते हुए तथा उनका यथास्थान प्रयोग करते हुए, सितार के सौन्दर्यात्मक मूल्यों का मूल्यांकन किया जा रहा है।

सितार के सौन्दर्य का जब प्रश्न आता है तो सर्वप्रथम सितार का बाह्य सौंदर्य ही मस्तिष्क में आता है कि सितार पर बहुत सुन्दर नक्काशी होती है। गुलाब की खूंटियां, सादा खूंटियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर लगती हैं, आदि। परन्तु सितार के सौन्दर्यात्मक मूल्य से यहां तात्पर्य उसके आवाज़ के गुण तथा वादन सौन्दर्य से है।

एक स्वरित द्विभुज से निकला शुद्ध स्वर एक ही आवृत्ति का होता है, अत: इसमें कोई सांगीतिक स्वर रूप अथवा मधुरता नहीं होती जबकि सितार का स्वर सौन्दर्यता से भरपूर होता है अत: अत्यधिक मधुरता उत्पन्न करता है। इसका कारण यही है कि सितार में मुख्य स्वर के साथ-साथ अन्य स्वर भी होते हैं जिनकी आवृत्तियां मुख्य स्वर से दुगनी, तिगुनी, चौगुनी - - - बीस गुनी होती हैं, इन्हें 'हार्मोनिक्स' कहा जाता है। इन हार्मोनिक्स की वजह से ही स्वर की मधुरता बढ़ती है।[१३]

सितार, सरोद, वायलिन तथा गिटार इत्यादि सभी वाद्यों से अत्यधिक मधुर प्रभाव उत्पन्न किया जाता है क्योंकि इनके स्वर मधुरता से परिपूर्ण होते हैं तथा उनमें बहुत ज्यादा हार्मोनिक्स होती है, परन्तु सितार इन सब वाद्यों में श्रेष्ठ होता है क्योंकि इसके स्वरों में हार्मोनिक्स के अतिरिक्त बारह अथवा इससे अधिक तरब के तार लगाकर गूंज के सिद्धान्त का काफी सुन्दर उपयोग किया गया है ।[१३]

इस प्रकार सितार अपने उपर्युक्त गुण के कारण विकास को प्राप्त होता हुआ, इस स्थिति पर आ गया है कि चाहे ध्रुपद हो या ख्याल, बीन हो या रबाब तथा ठुमरी हो या तराना -- सभी शैलियों का सितार पर वादन संभव है तथा सभी शैलियां अपने-अपने सौन्दर्यमूलक तत्वों से सितार वादन के सौन्दर्य को द्विगुणित करती हैं । यही कारण है कि सितार में इतना अधिक सौन्दर्य एकत्रित हो गया है कि श्रेष्ठ वादक अपने सितार वादन से श्रोता पर इच्छित प्रभाव डालने में स्वयं को समर्थ पाते हैं । इस सम्बन्ध में रविशंकर का कथन है कि, ' मैंने अपने सितार वादन से दीपक जलते अथवा बर्फ पिघलते तो नहीं देखा, परन्तु श्रोता की आंख से आंसू गिरते अवश्य देखे हैं ।'[२२]

उपर्युक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि सितार में अपना एक प्रभाव है, एक सौन्दर्य है जिसकी सहायता से कुशल सितार वादक अपने वादन से श्रोताओं को द्रवीभूत किए बिना नहीं रहता । यह रस, आनन्द अथवा सौन्दर्य जो राग में होता है, सितार पर अवतरित होकर मूर्त रूप धारण कर लेता है । जहां तक सितार - वादन में नवरसों की अवतारणा का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में काफी मतभेद है । परंतु कुछ विद्वानों के विचार जो कि सर्वमान्य प्रतीत होते हैं, वे यह हैं कि सितार वादन के द्वारा सही अर्थों में नौरसों का पान नहीं करवाया जा सकता । कुछ रस ही ऐसे हैं जोकि सितार वादन द्वारा उत्पन्न किए जा सकते हैं, वे हैं -- शांत, करुण, श्रृंगार एवं अद्भुत । अन्य रसों को मुख्यत: नाटक अथवा प्राचीन ध्रुपद एवं धमार -

गायकी द्वारा ही प्रतिपादित किया जा सकता है। रविशंकर रसों के प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भयानक एवं बीभत्स रस हमारे संगीत के लिए बेकार है। ये दोनों नृत्य के लिये काफी उपयोगी हैं। शेष सात रसों में से तीन (शांत, करुण, श्रृंगार) रस संगीत के सौम्य एवं सूक्ष्म गुणों को व्यक्त करने में काफी उपयोगी हैं। वीर, शान्त, करुण और अद्भुत रस प्राचीन ध्रुपद एवं धमार गायकी में काफी महत्व-पूर्ण थे। नवीन शैलियों की अपेक्षा इस शैली में सौन्दर्यात्मक तत्वों के लिए बहुत ही कम स्थान है। ध्रुपद गीत गंभीर तथा धार्मिक होते हैं तथा इन्हें विलम्बित लय में गाया जाता है। इसके गायन में गंभीरता के साथ स्वर विस्तार किया जाता है, इसलिए कुछ समय पूर्व तक जो संगीतकार ध्रुपद गाते थे, वे अपने संपूर्ण गायन में एक ही रस को कायम रखते थे तथा आद्यन्त एक-सी मानसिक स्थिति (मूड) रखते थे। ध्रुपद के बाद ख्याल की रचना से गायक को ध्रुपद से अधिक स्वतंत्रता मिल गयी। यह कोमल, अलंकृत एवं श्रृंगारिक भावाभिव्यक्ति से भरपूर होती है। इसमें गायक अपनी विचार-शीलता, तकनीकी, प्रभावशीलता एवं लय का चमत्कार अधिक दिखाता है जिससे ख्याल गायक एक रचना में ही कई रसों को उत्पन्न कर सकता है तथा समस्त रागों को एक समान ही व्यक्त कर सकता है। इसी प्रकार ठुमरी तो कई रागों का मिश्रण होती है, अत: यह कई प्रभाव सम्मिलित रूप से दिखा सकती है।[१७]

आधुनिक समय में राग का प्रारम्भ षड्ज के लगाव से होता है। इसके बाद स्वर विस्तार में कई प्रकार के स्वर-समूहों के माध्यम से वादकराग के स्वरूप को खोलता है, एवं मुख्यत: करुण एवं शांत रस को दर्शाता है। लय बढ़ने के साथ कलाकार अन्य रसों को भी दर्शा सकता है। अत: आत्मिक भावों का स्थान उत्तेजना ले लेती है तथा वीर और अद्भुत रस दर्शाए जा सकते हैं। प्राचीन ग्रंथों में एक राग का एक रस ही बताया गया है, परन्तु आधुनिक कलाकार इस सिद्धान्त को नहीं अपनाते, अत:

यह कहना ही उचित होगा कि प्रत्येक राग का एक मुख्य रस होता है तथा उस राग में उससे संबंधित अन्य रसों को भी दर्शाया जा सकता है। यथा राग मालकौंस जोकि वीररस प्रधान है, आलाप में शांत एवं करुण रस को अभिव्यक्त किया जा सकता है तथा बाद में जोड़ व झाले में राग को वीर, अद्भुत या रुद्र रस द्वारा भी विकसित किया जा सकता है।[१७]

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक सितार-वादन प्रणाली से `किसी विशेष रस अथवा एक ही रस का निर्वाह होता है,` -- यह कहना सर्वथा भ्रामक है। अत: रस को केवल रस न मान कर सौन्दर्य अथवा आनन्द का ही समानार्थी मानना उपयुक्त होगा। क्योंकि आधुनिक सितार-वादन से भी वादक किसी विशेष रस का रसास्वादन न कराकर सम्मिलित रूप से आनन्द ही देता है, जिसको श्रवण करने से श्रोता मस्त हो जाता है तथा आनन्दमग्न हो उसके सौन्दर्य से लाभान्वित होकर तन्मयता की स्थिति में आ जाता है।

सामान्यत: देखा जाय तो सितार का सौन्दर्य उसके वादन पर ही निर्भर करता है। अत: पीछे दिए गए `मनोवैज्ञानिक तत्व` एवं `सांगीतिक सौन्दर्य की मनोवैज्ञानिक जांच के लिए मूल आवश्यकताएं,` को ध्यान में रखते हुए एवं समर्थ निर्णायकों के परामर्श के आधार पर जो निष्कर्ष निकलते हैं, उनका सारांश सितार वादन के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से व्यक्त किया जा रहा है।

अधिकांशत: सितार वादन का प्रारम्भ किसी राग के षड्ज लगाव के साथ होता है। इस षड्ज का लगाव इतना महत्वपूर्ण होता है कि षड्ज लगाने से ही राग का परिचय मिल जाता है। यथा राग बिलासखानी तोड़ी में `नि॒ धृ-स` का सही लगाव ही बता देता है कि यह राग बिलासखानी तोड़ी है, इसी प्रकार अहीर

भैरव में `ध नी रे-स` का लगाव ही राग बता देता है, परन्तु षड्ज के लगाव में शुद्धता अनिर्वचनीय है। षड्ज लगाव के बाद राग के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए राग का आलाप किया जाता है। आलाप सामान्यत: शान्त एवं गंभीर भावों का ही उन्नयन करता है। आलाप में स्वर लगाव बहुत जटिल कार्य है, उसकी सूक्ष्मताओं को लिखने में कोई भी स्वरलिपि समर्थ नहीं है। यही कारण है कि इस संगीत-विधा को गुरु के सान्निध्य से ही प्राप्त किया जा सकता है, पढ़कर नहीं। आलाप को चार भागों में विभाजित करके राग-विस्तार किया जाता है-- (१) स्थाई, (२) अंतरा, (३) संचारी एवं (४) आभोग। इस विभाजन के आधार पर राग जौनपुरी का आलाप जितना स्वरलिपि के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, वह निम्न प्रकार है :--

(१) स्थाई :- स रे- म प, म-प, ध-प-, म ध म प-,
रे-म प ध-, म-प-, नी ध प-, म प नी ध प-, ध, म प-,
म प ध म प ग-, रे-स, रे- म प, स रे म-, रे म-, स रे प म-,
स रे म, रे म प म-, म ग रे म-, ध म ग-, रे म-, नी ध प म-,
सं नी ध प म-, रे-म प ध म-, रे म प नी ध प म, म प नी ध प ग-,
रे-स-, रे-म प स- स स- नि नि स रे- स

(२) अन्तरा :- म प ध नी सं-, नी सं-, ध-नी-सं-, रें नी सं-,
म प ध नी सं रें गं-, रें सं-, गं रें सं-, रें मं पं गं-, रें-सं-,
रें नी ध प-, नी ध प, सं नी ध प-, म प ध म प ग-, रें म-प,
ध-नी सं-, म प ध नी सं-, रे म प नी ध प, ध नी सं-, रें सं-,
गं- रें सं-, मं गं रें सं-, रें मं पं गं-, मं गं रें सं-, सं रें सं नी ध प म प ग-,
रे-म प, नि नि स रे- स

(३) संचारी :- सा-रे नी़ सा-, रे नी़ ध़ प़-, ध़-, म़-प़-ग़- रेसा-,
ग़ रे़ सा-, प़ ग़-, रे़ सा-, ध़ म़ प़ ध़ ग़-, ग़-रे़ सा़-, रे़-म़ प़,
सा नी़ ध़ प़, नी़ ध़ प-, ध़ म़ प़-, रे म़ प़ ध़-, ध़-, म़ प़ ग़ रे- सा-,
स़ रे़ म़ प़-, म़ प़ नी़- ध़ प-, रे़ म़ प़ नी़ ध़ प़-, ध़-म़ प, ग़- रे़ म़ प़-,
म़ प़ ध़-, नी़ सा-, प ध़ म प ग़-, रे मं प ध़ म पे ग़-, म प ग़-रे-म प,
नी़ स रे- स

(४) आभोग :- सा रे- म प, रे म प-ध़, म प ध़ नी़ सं-, सां रें सां-,
गं रें सां-, मं गं रें सां-, नी़ सां रें सां-, रें नी़ ध़-, प, सा रे म प
नी़ ध़ प-, सां नी़ ध़ प म ग़ रे सा-, रे-म प, म, प, ध़,
नी़ सां-, गं- रें सां-, रें मं पं गं-, रें सां-, सां रें मं गं रें सां-,
रें नी़ ध़ प ध़ ग़-, गं रें सां नी़ ध़ प म ग़-, ग़-, रे सा
रे- म प, नी़ नी़ स रे- स ।

इस प्रकार उपर्युक्त जौनपुरी के आलाप में कुछ स्वर संगतियां ऐसी हैं, जो बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती हैं तथा राग के रूप को भी एकदम सामने रख देती हैं यथा -- रे म प, नी़ ध़ प और म प ध़, म प ग़-, रे-म प । जबकि कुछ स्वरावलियां राग में प्रयुक्त तो होती हैं परन्तु उनमें इतना अधिक सौन्दर्य नहीं होता । यथा जौनपुरी के आलाप में ही लगाई गई कुछ स्वरावलियां निम्न प्रकार हैं -- रे म प-, म प-, ध़-प या ग़-, म ग़-, स रे म ग़- आदि ।

इसी प्रकार राग जौनपुरी में स्वरों के अलंकारों का प्रयोग भी ध्यान से करना चाहिये । जौनपुरी में अगर हम एक स्वर पर दूसरे स्वर का कण लगाते हुए बजा रहे हैं तो कुछ स्वर पर कण सुन्दर लगता है, कुछ पर नहीं । यथा रे-म प बजाया तो रिषभ पर गंधार का कण लेते हुए बजा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है परन्तु अगर

रे-म प की संगति में रिषभ पर कण न लेकर मध्य स्वर पर पंचम का कण लेकर बजायेंगे तो वह इतना अधिक सुन्दर नहीं लगेगा । इसी प्रकार अगर सितार वादन के आलाप का प्रारम्भ करते ही इसमें गमक, जमजमा का प्रयोग करें तो बहुत ही खराब लगता है जबकि आलाप के प्रारम्भ में मीड़, कण जैसे अलंकरण ही अधिक सौन्दर्योत्पादक लगते हैं । प्रत्येक स्वर के बाद दूसरे स्वर पर कितनी देर में आघात करें, यह भी सितार वादन में एक महत्वपूर्ण तत्व है । यथा जौनपुरी राग में ही 'रे-म प, नी- ध प-, ध- म प ग-, रे-म प- स्वरावली बजायेंगे तो बहुत सुन्दर लगेगी परन्तु अगर 'स रे म प नी ध - - प म - प ग रे- स' आदि बजायेंगे तो राग के सौन्दर्य को हानि पहुंचती है ।

इस प्रकार अनेक सौन्दर्यात्मक तत्व हैं, जो कि आलाप वादन में सहायक होते हैं । इस प्रकार सितार पर आलाप बजाने में विभिन्न रागों की प्रकृति भी अपना पृथक अस्तित्व रखती है । यथा कोई गम्भीर प्रकृति का राग है, तो उसमें कण, कृंतन आदि का प्रयोग बहुत कम किया जाता है । मीड़ का काम ही अधिक होता है । इस प्रकार सितार वादन करते समय आलाप में एक कड़ी सी बन जानी चाहिये । साथ ही आलाप के एक भाग का वादन समाप्त होने पर सम भी दिखाना ज़रूरी है । आलाप में अगर उसकी तारतम्यता टूटती है तो वह श्रोता जो कि उसके वादन में एकाकार होकर बैठा है, उसकी भाव-श्रृंखला भी टूट जाती है जिससे श्रोता की तन्मयता भंग हो जाती है तथा सौन्दर्यानुभूति अथवा रसात्मकता नहीं मिल पाती। इसलिये सितार वादक को अपने वादन में एक ऐसा क्रम रखनाचाहिये जो समस्त आलाप को जोड़े रहे । यहां यह ध्यान देने योग्य है कि वादन की सूक्ष्मता लिखी नहीं जा सकती अत: लिखा हुआ आलाप सहायक मात्र है ।

इसी प्रकार जो राग गंभीर प्रकृति के हैं यथा बिलासखानी तोड़ी, इसमें कण, कृंतन अधिक सुन्दर नहीं लगते । जबकि इस राग में नियमबद्ध मीड़ ही सुन्दर प्रतीत होती है । यथा --

नि़ ध़ - स-, स रे ग़ नी़ - ध़ स-, स रे ग़-रे़-गे़-रे़-स । ग़ प नि़ ध़-सं रें नी़-ध़-म ग़ रे़ - ग़ - रे़ स - । इस प्रकार आलाप वादन में राग की प्रकृति देखकर ही वादन करना चाहिये । अन्यथा उसका सौन्दर्य क्या, राग का रूप ही भ्रष्ट हो जाता है ।

इस प्रकार सितार वादक को आलाप वादन में रागालाप और रूपकालाप के नियमों के अन्तर्गत षडवत्व, औडवत्व आदि विषयों को देखते हुए यह भी जानना आवश्यक है कि यदि वर्जित एवं विवादी स्वर के पर्दे पर मीड़ लेने से राग सौन्दर्य - वृद्धि अथवा सहज साध्य हो जिससे राग की शुद्धता में भी हानि न हो तो ऐसे अवसर पर वर्जित अथवा विवादी स्वर के पर्दों का प्रयोग किया जा सकता है । जैसा कि जौनपुरी के आलाप को उदाहरणार्थ दिया गया है । आलाप में स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग इन चार भागों पर क्रमश: चलना चाहिये । स्थाई के आलाप में एक-एक स्वर को लेकर क्रमानुसार स्वरों के साथ जोड़कर मध्य सप्तक के निषाद तक जाना चाहिये । स्थाई का आलाप समाप्त करते समय तार `सां` को थोड़ा स्पर्श करके मध्य सप्तक के `सा` पर आकर स्थाई खत्म करनी चाहिये । अन्तरे का आलाप मध्य सप्तक के गंधार, मध्यम अथवा पंचम से आरम्भ किया जाना चाहिये । अन्तरे के आलाप में तार `सां` को बार-बार लगाते हैं और हर बार नयी-नयी स्वरावलियां इस तरह लगानी चाहिये कि वह नयी व सुन्दर लगें । इसमें तारसप्तक के पंचम तक वादन किया जा सकता है । फिर मध्य षड्ज पर सम दिखाना चाहिये। संचारी का आलाप साधारणत: मध्य सप्तक के `मे`,`पे` या `सा` से आरम्भ करना चाहिये । यह आलाप मध्य एवं मंद्र सप्तक में ही अधिक सुन्दर प्रतीत होते हैं । इसके

पश्चात जब आमोग बजाया जाता है, तब इसमें तार `सा` पर अधिक जाया जाता है। आमोग का आलाप साधारणत: अन्तरे के आलाप की ही पुनरावृत्ति होती है। पुन: मध्य षड्ज पर आकर सम दिखाना चाहिये।

पूर्वांगवादी रागों का आलाप वादी व संवादी स्वर से आरम्भ किया जाता है। इस आलाप को करने से पहले वादक `सा` `प` या `नी` `सा` इन स्वरों को उत्तम तरीके से बजाकर बहुत से छोटे-छोटे स्वर समुदायों को लेकर बार बार षड्ज में आकर मिलते हैं तथा एक निश्चित स्वर समुदाय को लेकर सम दिखाते हैं। जैसे राग यमन में सा नी सा नी रे सा। इसका बोल `दा दा रा दा` होता है। अच्छे वादक राग के कुछ निर्दिष्ट स्थानों से हर बार छोटे-छोटे स्वर समुदायों को लेकर हर बार, सम पर मिलते हैं। यह मिलाप बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है। कुछ कलाकारों के अनुसार आलाप में चारों अंग विलम्बित लय में ही होने चाहिये परन्तु जिन कलाकारों का वादन ख्याल व ठुमरी प्रधान होता है यथा उस्ताद विलायत खां, यह कलाकार ख्याल व ठुमरी के ढंग से ही आलाप करते हैं। जैसे ख्याल या ठुमरी की कोई चीज़, थोड़ा सा हिस्सा बजाकर कुछ स्वर समुदायों के साथ छोटी-छोटी मुरकियां लेते हुए सम पर आते हैं, ऐसे वादन से साधारण श्रोता सहज ही मुग्ध हो जाते हैं। परन्तु आलाप में ऐसा करना सितार की सौन्दर्यता को हानि पहुंचाता है। वादन का सौन्दर्य नियम के उल्लंघन की जगह पालन करने में ही होता है।

सितार वादन के आलाप की दूसरी सीढ़ी जोड़ालाप है। जोड़ शब्द का अर्थ स्वर समूहों की परस्पर योजना है। अर्थात् किसी विशेष स्वर समुदाय के साथ अन्य स्वरों का सुन्दर योग जिसमें कि उस विशेष स्वर समुदाय का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ बार-बार किया जाय। ~~क्या~~ वह स्वर समुदाय हरबार

नया प्रतीत होता है तथा राग के स्वरूप के स्पष्टीकरण में सहायक हो। जोड़ालाप के वादन में लय द्रुत हो जाती है अथवा यह कह सकते हैं कि आलाप की लय से दुगनी लय हो जाती है। इसमें भी आलाप के समान सम दिखाया जाता है और सम के लिए वही स्वर समुदाय प्रयुक्त होगा जो आलाप में सम के लिए प्रयोग किया गया है। आलाप के इस भागमेंमींड़ का प्रयोग कुछ कम तथा कम्पन, गमक और कृंतनादि का प्रयोग अधिक शुरु हो जाता है। जोड़ालाप में सौन्दर्य रखने के लिए वादक को राग के शास्त्रीय नियमों का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। किस स्वर के साथ किस स्वर का प्रयोग करने पर राग का रूप स्पष्ट होगा, यह जानकारी आवश्यक है। यथा - राग यमन में `नि़ रे ग` स्वर के साथ जोड़ करना है तो निम्न स्वर लगाना होगा -- नि़ रे ग, नि़ रे ग मे ग, ध नि़ स रे नि़ रे ग मे ग, नि़ रे ग रे ग मे ग मे प ध मे प मे ग रे ग मे ग, मे ध प मे ग रे स, नी रे ग मे ध नी, मे ध नी, नी ध प, मे ध नी रें सं, नी ध मे ग रे स, नि़ नि़ रे ग×

जोड़ालाप में सम दिखाने का भिन्न-भिन्न कलाकारों का भिन्न-भिन्न तरीका होता है। यथा कुछ कलाकार यमन में ही सम इस प्रकार लेंगे -- स- सस-नि़ नि़ रेग×, जबकि कुछ इस प्रकार लेंगे -- सस-सस-नि़नि़ सस×। परन्तु यहां जिस सम का भी प्रयोग होगा, वह आद्यन्त वैसा ही होता है। जोड़ालाप में एक लय रहती है जो कि सौन्दर्य को बनाए रखने में बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह लय भी कलाकार अलग-अलग रखते हैं। यथा कुछ कलाकारों के वादन में स - - - स - - - ध - - नी - - रे - - स - - - स - - - म - ध - नी - रे - स - - स - -

इसके वादन में तारों को छेड़ने का एक अपना क्रम होता है। उपर्युक्त स्वरों को बजाने में जैसे पहले स - - - है। इसमें `स` पर मिज़राब का आघात किया, फिर `-` की जगह जोड़ी के तार को, `दा` बोल से छेड़ा, फिर

पीछे के `स सं` तारों को पहले `दा` बोल से छेड़ा फिर तार `सं` के तार को `रा` बोल से छेड़ा तब स - - - बजा । इसी प्रकार ध़ - नी़ - में ध़ पर मिज़राब का आघात फिर `-` में जोड़ी का तार छेड़ा, फिर नी़ पर मिज़राब का आघात तथा `-` पर जोड़ी का तार छेड़ा । इसी क्रम के साथ धीरे-धीरे लय बढ़ती जाती है और जोड़ी एवं चिकारी के तारों का प्रयोग कम होता जाता है तथा क्रंतन, गमक, सूत, घसीट एवं सपाट वादन शुरु हो जाता है । यथा राग अहीर भैरव में ही जब जोड़ालाप द्रुत गति में आता है तो निम्न प्रकार क्रंतन लगाया जाय तो बहुत सुन्दर प्रतीत होता है । यथा - स रे स ग- रे स रेरे, ग म ग प म ग म म, सं रें सं ग रें सं रेरें, सं रे, सं नी़ ध प म ग रे स - ध़ - नी़ रे स ।

इसी प्रकार अगर जोड़ालाप में गमक दिखानी है तो अहीर भैरव में ही निम्न प्रकार का वादन बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है --

ध़ ध़ ध़, नी़ नी़ नी़, ध़ ध़ ध़, स स स, नी़ नी़ नी़, रे़ रे़ रे़, स रे़, गम पम, ग म गरे़, स रे़ नी़ स अथवा

राग नायकी कान्हड़ा में गमक का प्रयोग निम्न प्रकार किया जाय तो बहुत सुन्दर दृष्टिगत होता है --

स, रेरेरे, नी़, स स स, प़ नी़ नी़ नी़, प़ नी़ नी़ प़ नी़, सस नी़ स, रेरे

इसी प्रकार का क्रम तार सप्तक तक बजायें तो बहुत ही सुन्दर माहौल उपस्थित हो जाता है । परन्तु इस प्रकार की गमक के लगाव में मीड़ भी सम्मिलित है तो यह ध्यान रखना चाहिये कि उचित परदे पर तथा सही मीड़ ही निकले अन्यथा राग को हानि पहुंचती है ।

इसी प्रकार 'घसीट' अलंकरण का जोड़ालाप में प्रयोग देखें तो राग अहीर भैरव में निम्न प्रकार ~~मनक~~ का प्रयोग बहुत सुन्दर प्रतीत होगा --

ध़ नी़ रें सं नी़ ध, प म ग रे़ स -

अथवा ध़ नी़ रे़ स रे़ स नी़ ध प, म ग रे़ स

आदि अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जो कि अलग-अलग रागों में भिन्न प्रकार के सौन्दर्य का निर्माण करते हैं। सपाट बजाना भी एक बहुत सुन्दर एवं मेहनत की कला है। यह बहुत अधिक अभ्यास के पश्चात ही संभव है। इसका उदाहरण राग अहीर भैरव में निम्न प्रकार है --

स़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नी़ रे़ स रे़ ग म प ध नी़ रें सं रें गं मं पं मं गं रें सं नी़ ध प म ग रे़ स नी़ ध़ प़ म़ ग़ रे़ स़ नी़ ध़. प़. ध़. नी़ रे़ स़, ध़ नी़ रे़ स`

इस प्रकार के स्वर समूहों का प्रयोग स्वत: ही अद्भुत रस का संचार होने पर बाध्य करता है। इस प्रकार का वादन श्रोता में आश्चर्य उत्पन्न कर देता है अथवा वादन के इस सौन्दर्य प्रकार से कहा जाता है कि सोते हुए श्रोता भी उठ जाते हैं। इस प्रकार जोड़ालाप में वादक अपनी काफी तैयारी दिखा देता है। आलाप के इस भाग में लगभग सभी अलंकरण जो उस राग के नियमानुसार हों, तथा वादक की तैयारी, चमत्कारादि का खूब प्रदर्शन होता है। अच्छे सितार वादक अपने जोड़ालाप से ही वादक को इतना बांध लेते हैं कि वास्तव में श्रोता उस वादन के साथ एकाकार हो जाता है और यही तन्मयता की स्थिति अथवा सौन्दर्यानुभूति की पराकाष्ठा होती है।

जोड़ालाप में सितार वादक को कुछ नियमों का ध्यान रखना भी आवश्यक हो जाता है। इसमें भी स्थाई के आलाप की भांति मध्य सप्तक से वादन प्रारंभ करना चाहिये और विशेष स्वर समुदायों के साथ स्वरों की बांट व बढ़त करनी चाहिये। मध्य सप्तक से राग के वादी और संवादी स्वरों को लेते हुए तार सप्तक

में जाना चाहिये । अन्तरे के आलाप की तरह इसमें भी मध्य सप्तक से तार सप्तक के पंचम तक क्रमानुसार स्वरों की बढ़त की जाती है और निर्धारित स्वर समुदाय द्वारा सम दिखाना चाहिये । फिर तीनों सप्तकों के मुख्य स्वर समुदायों का प्रयोग किया जाता है । इसमें एक ही स्वर समुदाय क्रमश: मंद्र, मध्य एवं तार सप्तक में प्रयोग किया जा सकता है, यथा राग पूरिया कल्याण में -- रे॒ ग॒ म॑ प॒, रे ग म॑ प, रें गं में पं स्वर समुदाय बहुत सुन्दरता से प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु अन्य भाव की पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिये । साधारणत: जो राग चंचल प्रकृति के अथवा ठुमरी प्रधान होते हैं, उनमें गमक का काम अच्छा नहीं लगता अत: वहां मीड़ और ज़मज़मे के प्रयोग से बहुत ही अधिक सौन्दर्य का निर्माण होता है ।

जोड़ालाप के पश्चात सितार पर जोड़ झाला बजाने का क्रम है । इसके अन्तर्गत वादन और अधिक द्रुत गति से किया जाता है । साधारणत: जोड़ालाप से इसकी लय दुगनी हो जाती है, परन्तु यह लय कलाकार की वादन क्षमता पर ही निर्भर करती है । आलाप का यह अन्तिम चरण होता है । इसमें वादक मुख्यत: सीधे हाथ का काम ही अधिक दिखाता है । कुछ संगीतकार आलाप के इस भाग को सितार वादन में निरर्थक मानते हैं, परन्तु अधिकतर सितार वादक इसे बजाते हैं । जोड़ झाले के बोलों में भी भिन्नता होती है । कुछ वादक इसमें दा रा रा रा बोल ही बजाते हैं जबकि कुछ सितार वादकों का कथन है कि इस प्रकार के बोल सितार वादन के अन्त में बजाए जाने वाले झाले में ही बजाए जाने चाहिये । जोड़ झाले में उल्टा झाला बजाना चाहिये । जो कि उचित भी प्रतीत होता है । इस प्रकार जोड़ झाले में विभिन्न प्रकार के मिज़राब के बोलों के द्वारा स्वर विस्तार किया जाता है ।

कुछ मिज़राब के बोल निम्न प्रकार होंगे -

१. रा दा दा दा रा दा दा दा रा दा दा दा रा दा दा दा
२. रा दा दा रा दा दा रा दा रा दा दा दा रा दा दा दा
३. रा दा रा दा रा दा दा दा रा दा रा दा रा दा दा रा
४. रा दा दा रा दा दा रा दा दा रा दा दा रा दा रा दा
५. रा दा रा दा रा दा दा दा रा दा रा दा रा दा दा दा
६. रा दा रा दा दा रा दा रा दा दा रा दा रा दा दा दा
७. रा दा रा रा दा रा रा दा रा दा रा रा दा रा रा दा
८. रा दा दा रा दा दा रा दा रा दा दा रा दा दा रा दा
९. रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा दा रा दा दा रा दा
१०. रा रा दा रा रा रा दा रा रा दा दा रा दा दा रा दा

इस प्रकार इस जोड़ फाले में अनेक प्रकार के बोलों का प्रयोग हो सकता है तथा किसी भी राग के स्वरों को इन बोलों के साथ बजाने पर वह राग के अनुसार ही सौन्दर्योत्पादन में समर्थ होते हैं। मिज़राब के बोलों का सौन्दर्य ही जोड़ फाले का सौन्दर्य है। अत: इन बोलों को बजाने में मिज़राब का आघात एकदम बराबर भार वाला एवं सफाई से पड़ना चाहिये। यह भी सुन्दरता एवं सफाईसेबजाए जाने पर श्रोता को मुग्धकिए बिना नहीं रहता। जोड़ फाले के अंत में कुछ द्रुत गति की सपाट तानें लेकर फिर सम लगाकर विलम्बित गत का प्रारम्भ किया जाता है। इस जोड़ फाले को 'उल्टा' फाला कहते हैं क्योंकि इसके बोल 'सुलट' फाले से उल्टे होते हैं। इस फाले को बजाने में 'रा' बोल पर चिकारी तथा 'दा' बोल पर बाज के तार पर स्वरों का वादन किया जाता है।

आधुनिक समय में विलम्बित गत का अभिप्राय मसीतखानी गत से ही होता है। मसीतखानी गत के बोल काफी पहले से जो प्रचलित थे, वही आज तक कायम हैं। यथा `दिर दा दिर दा रा दा दा रा दिर दा दिर दा रा दा दा रा`। यह गत तीनताल में बद्ध होती है। गतों का प्रारम्भ बारहवीं मात्रा से होता है। इन गतों में वादन के अलंकरणों का प्रयोग बहुत सुन्दरता से किया जाता है। मीड़, गमक, जमजमा, सूत, घसीट, कृंतनादि के प्रयोग से मसीतखानी गत के सौन्दर्य को द्विगुणित किया जाता है। मसीतखानी गत का सौन्दर्य उसकी प्रारम्भिक पहली मात्रा से ही ज्ञात हो जाता है। कुछ गतों का प्रारम्भ ही मन पर छा जाता है। उदाहरणार्थ नीचे राग बिलासखानी तोड़ी की गत दी जा रही है जिनके प्रारंभिक स्वर लगाव सौन्दर्यात्मक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं --

		३ गुप धु नी । धम-रे ग-रे-नीध- सरे-
		दारादारा । दारा-दारा-दा-दारा-दारा
× ग ग ग रेरे । २ ग प प धु म ।	० रे गे रे स	
दा दा रा दारा । दा दारा दा रा ।	दारा दा रा	

उपर्युक्त गत की प्रथम मात्रा गुप धुनी है। इस स्वरावली में गंधार को परदे पर बजाकर पधुनी स्वरों को शुद्ध मध्यम के परदे पर मीड़ से बजाया जाय (यहां यह ध्यान देने योग्य है कि जब शुद्ध मध्यम के परदे पर अन्य स्वरों की मीड़ ली जाए तो मध्यम स्वर पर जरा भी आघात नहीं होना चाहिये क्योंकि वह इस स्वरावली में वर्ज्य है) तो बहुत ही सुन्दर लगता है जबकि अगर इसी स्वर समूह को अमर परदों पर ही बजाया जाय तो इसका सौन्दर्य बहुत ही कम रह जाता है। इसी प्रकार अगर गत को गुप धुनी से प्रारम्भ न करके `धुनी` से ही प्रारम्भ करें तो भी वह सौन्दर्य नहीं आता है। इसी तरह उपर्युक्त गत में जो बाकी स्वर लगाव है, वह

भी सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण से बहुत ही श्रेष्ठ हैं।

इसी प्रकार राग यमन की मसीतखानी गत नीचे दी जा रही है तथा उसे बजाने का तरीका भी बताने का कुछ प्रयास किया गया है। देखिएगा कि इस गत को भिन्न-भिन्न तरीके से बजाने पर इसके सौन्दर्यात्मक मूल्य में कितना अन्तर आ जाता है --

नी-रेगमेप । मे-ग-रेरे स-नीध़-नीरे-

× २ ०
ग मे ग रे ग नि़ रे ग। निरे ग मे मे ध - मे ध नी। ध-प- -मे ग- रे-स-

उपर्युक्त गत के वादन में (जैसाकि स्वरलिपि से भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है) बहुत दुरूहता आ गयी है जिसका कारण इसके कठिन बोलों का एवं मींड़ का प्रयोग है। सर्वप्रथम प्रारंभिक एक मात्रा छह स्वरों की है। इसमें निषाद व रिषभ को परदों पर बजाकर गंधार स्वर पर मेप की मीड़ लेकर बजाना है, फिर उसी मीड़ में अगली मात्रा के मे-ग- भी बजाना है। फिर रेरे, स-नीध़ -नीरे- स्वरों को परदों पर ही बजाना है, फिर राग के गंधार को परदे पर दूसरे 'ग' को मे का कण लगाकर तथा तीसरे 'ग' को 'रे' का कण लगाकर बजाया जाएगा। इसके बाद 'नि़' के परदे पर ही 'रे' व 'ग' को मीड़ से बजाना है, फिर अगली मात्रा 'नि़रे' को भी मीड़ से बजाना है। 'मेमे' स्वरों को 'ग' का कण लेकर साथ ही रिषभ से घसीट लेकर बजाना है। पुन: 'ध' को परदे पर बजाकर -मेधनी, स्वर संगति की मात्रा मे के परदे पर मीड से बजाकर अगली मात्रा ध-प- को भी मे के परदे पर ही मीड़ से बजाना है। बाकी स्वरों में अवग्रह का ध्यान रखते हुए बजाते हैं। इस प्रकार गत में यथास्थान मुर्की, कृन्तन, गमक, खटका आदि का प्रयोग भी किया जाय तो यह गत समस्त आभूषणों से सुज्जित सुन्दर नारी के समान सौन्दर्योत्पादक हो जायेगी।

इसके विपरीत अगर उपर्युक्त यमन की गत को ही बिना मीड़, घसीट, कण, मुर्की, कृन्तन, गमक तथा खटका आदि के बजायेंगे तो यही गत बहुत ही नीरस हो जायेगी तथा इसमें सौन्दर्य अथवा रस का कोई स्थान नहीं होगा।

मसीतखानी गत के वादन के साथ ही पहले उसमें राग विस्तार अथवा आलाप किया जाता है जो कि राग के प्रारम्भ में बजाए गए आलाप की ही तरह होता है। केवल गत में बजाया जाने वाला आलाप तालबद्ध हो जाता है जिससे इसके वादन में साधारण स्तर का श्रोता अधिक आनन्द की अनुभूति करने लगता है। कुछ कलाकारों का आलाप पूर्णत: ख्याल पर आधारित होता है जबकि कुछ वादकों का यह आलाप ध्रुपद पर आधारित होता है। दोनों ही प्रकार का गतकारी - आलाप सौन्दर्य उत्पादन में सफल होता है बशर्ते वादन में प्रयुक्त स्वर राग रूप की शुद्धता को ध्यान में रखते हुए, सफाई से तथा यथास्थान अलंकरणों से युक्त हों। राग बिलासखानी तोड़ी में बजाया हुआ एक स्वर विस्तार जो कि सम से प्रारम्भ करके मुखड़े से उठाया जाएगा, निम्न है --

नि॒ ध॒ स - -स - - स - - - नि॒ ध॒ रे॒ - रे॒ - - -

-नि॒ - ध॒, म॒ - ग॒ - प॒ - - - - ध॒ - - स - - - स - - -

मुखड़ा गपधनि॒, धम॒ - - - -

उपर्युक्त स्वर विस्तार कोमल धैवत के परदे पर ही नि॒ की मीड़ लेकर प्रारम्भ किया जाएगा फिर आगे की पांच मात्राएं धैवत पर ही मीड़ से बजायी जायेंगी तथा फिर खुला तार म॒ का बजाकर जोड़ी के तार पर ग॒ बजाकर फिर बाज के तार पर प॒ बजाकर धैवत के परदे पर ही मीड़ से यह आलाप समाप्त कर दिया जाएगा फिर गत का मुखड़ा पकड़ना है। इस विधि से बजाने पर राग का पूर्ण रूप इसी आलाप में निखर आता है तथा बहुत ही अधिक सुन्दर लगता है।

उपर्युक्त स्वर विस्तार को अगर बजाने में कुछ थोड़ा सा अन्तर कर दें तो सौन्दर्य में अन्तर आ जायगा । यथा -- अगर सब स्वरों को परदे पर बजायें अथवा स्वर विस्तार खत्म होने पर मुखड़े की जगह सम से उठायें तो इस विस्तार का सौन्दर्य एकदम कुचल जायगा ।

इस प्रकार सितार वादन में प्रत्येक स्वर को लगाना एक कला है । अगर इसमें वादक जरा सा भी चूक जाता है तो सौन्दर्य नष्ट हो जाता है । परन्तु अगर सचेत होकर बजाता है, तो वह बहुत सुन्दर राग की प्रतिमा ही खड़ी कर देता है । गतकारी में आलाप के पश्चात् तोड़े एवं तानों का वादन प्रारम्भ होता है । सामान्यत: तान एवं तोड़ों के द्वारा वादन में चंचलता का समावेश होता है। क्योंकि इससे पूर्व आलाप सामान्यत: गम्भीर एवं करुण भावों को ही उजागर करता है तथा आलाप में स्वर लगाव में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है जबकि तानों में वह बंधन कुछ शिथिल पड़ जाता है । यथा दरबारी कान्हड़ा एक आलापचारी का राग है और वह आलाप द्वारा अपेक्षित प्रभाव भी डाल लेता है, परन्तु जब उसी में तानें बजायीजाती हैं तो वह बंधन कायम नहीं रह पाता तथा उसमें सारंग का अंग झलकने लगता है । यही कारण है कि पुराने संगीत विद्वानों ने रागों को विभाजित किया हुआ था । कुछ निश्चित रागों में आलापचारी ही करनी होती थी, गतकारी निषिद्ध थी । अगर गतकारी करनी होती थी तो उसके समान दूसरे राग में गतकारी की जाती थी । कुछ जोड़े निम्न प्रकार हैं जिनमें क्रमश: आलापचारी एवं गतकारी का नियम था --

आलापचारी के राग	गतकारी के राग
१. बिलासखानी तोड़ी	भैरवी
२. दरबारी कान्हड़ा	अड़ाना
३. पूरिया धनाश्री	बसंत

४. पूरिया	सोहनी
५. भूपाली	देशकार
६. मियां मल्हार	बहार

उपर्युक्त रागों के जोड़ों में सामान्यत: प्रथम यथा बिलासखानी तोड़ी आदि गम्भीर प्रकृति के होते हैं। मंद्र स्थान में ज्यादा चलन होता है, अर्थात् पूर्वांग - प्रधान हैं तथा आलापचारी के लिए ही निश्चित किये गये हैं जबकि दूसरे राग यथा भैरवी आदि, चंचल प्रकृति के हैं। उत्तरांग प्रधान तथा तार सप्तक में अधिक वादन किया जाता है तथा इन्हें गतकारी के लिए ही प्रयोग किया जाता था, आलापचारी के लिये यह निषिद्ध थे। इसी प्रकार शुद्ध कल्याण सामान्यत: आलाप-चारी का राग है तथा उसमें निषाद का प्रयोग कण मात्र होता है, परन्तु तानों में यह बंधा नहीं रह पाता और निषाद पूरी तरह लग जाता है। इसी प्रकार पूरिया कल्याण मध्य सप्तक प्रधान है। अगर इसे मंद्र सप्तक में ज्यादा बजायें तो पूरिया का प्रभाव बढ़ जाता है और अगर तार सप्तक में ज्यादा बजाएं तो कल्याण का प्रभाव बढ़ जाता है। इस प्रकार सितार वादन में राग रूप को यथोचित एवं यथास्थान लगाकर ही उसके मूल सौन्दर्य का निर्वाह किया जा सकता है। तनिक शिथिल होने से ही उसका रूप, रस, सौन्दर्य एवं आनन्द आदि सभी कुछ खत्म हो जाता है। प्रत्येक राग का अपना एक दायरा है, वह उसी में सुशोभित होता है। अगर दूसरे राग की सीमा में जाने का प्रयास करता है तो अपने अस्तित्व को ही भ्रष्ट कर लेता है।

इस प्रकार कुछ राग हैं जिनमें कि तोड़े एवं तान शोभायमान होते हैं तथा उनका यथोचित प्रयोग सौन्दर्योत्पादन में सहायक होता है। परन्तु आधुनिक प्रदर्शन के युग में सभी रागों में आलापचारी एवं तानों का प्रयोग होने लगा है जिससे आधुनिक वादन के सौन्दर्य मूल्य में भी भिन्नता आ गयी है। यही कारण है कि आधुनिक

सितार वादन श्रोता को द्रवीभूत तो कर देता है तथा सौन्दर्यानुभूति भी करा देता है, परन्तु पत्थर पिघलाने या पानी बरसाने के भावों को वह उजागर नहीं कर पाता। कुछ तोड़ों के उदाहरण दिए जा रहे हैं जो कि भिन्न प्रकार से बजाए जाने पर भिन्न प्रकार के सौन्दर्य को प्रदर्शित करते हैं।

राग मारु बिहाग का तोड़ा

प मे ग, मे प ध, मे प, प मे ग, मे ग रे, स- नि स स, ग मे मे, पध
ध, मे प प, ग मे, प मे, ग प, मे प, मे प, प ध, प नी, ध नी, ध प, मे प
प-सें-नी ध, पमे, मे-नी-धप, मेप, ग-प-मे ग रे स
प मे, ग रे, स ग, मेप, प-प-प-पमे, गरे, स ग, मे प, प-
प-, प-, पमे, गरे, स ग, मे प, प-प-, प

उपर्युक्त तोड़े में मिज़राब के बोलों का काफी प्रयोग किया गया है। मिज़राब के प्रयोग मात्र से तोड़े के सौन्दर्य में अन्तर आ जाता है। उपर्युक्त तोड़े को ही उपरिलिखित बोलों के साथ बजायें तथा फिर बिना बोलों के बजायें तो उसके सौन्दर्य की भिन्नता सहज ही स्पष्ट हो जायेगी। जब बोलों का प्रयोग किया जायेगा तब तोड़ा कुछ कठिन एवं सुन्दर होगा तथा कुछ विचित्रता भी उत्पन्न हो जाती है, परन्तु जब बोलों का प्रयोग नहीं किया जाता तो वही तोड़ा बहुत साधारण सा प्रतीत होता है। इसीके साथ ही उपर्युक्त तोड़े को सम पर पकड़ने का संकेत दिया गया है, परन्तु अगर इसी तोड़े को मुखड़े से उठायेंगे तो सौन्दर्य घट जायेगा जबकि सम पर मिलना बहुत ही आनन्ददायी प्रतीत होगा। इसी प्रकार राग पूरिया कल्याण का एक तोड़ा उद्धृत किया जा रहा है जो कि मुखड़े की तिहाई लगाकर मुखड़े से ही पकड़ने पर बहुत सौन्दर्योत्पादक होगा। इसके साथ ही निम्न तोड़े को रबाब अंग के बोलों से प्रारम्भ किया गया है --

नी-रे-ग-मं; ग - - ग ग ग, ग ग, ग ग ग, ग ग ग, ग ग,
मे ग रे स नि रे स- स - - - - - - - -, नी रे स नि ध नी ध -
नी रे ग मे ग रे स- नी रे रे, नी ग ग,रे मे, मे, ग ध ध, मे नी, ध सां
नी रें सं नी ध नी ध प, मे ध प मे ग मं ग- मे ग रे स नी रे ग मे
प मे ग मं ग रे स - रे - ग - मं - प- ग - - - मे ग रे स
नी रे ग मं प मे ग मे ग रे स - रे - ग - मे - प - ग - - -
मे ग रे स नी रे ग मे प मे ग मं ग रे स - मुखड़ा रेग मेप, ग रेरे - - - - -

इसी प्रकार कुछ तोड़े जिनमें गमक का प्रयोग किया जाता है । यह पृथक सौन्दर्यानुभूति प्रदर्शित करते हैं । इससे वादन में जटिलता एवं गम्भीरता का समावेश हो जाता है । राग अहीर भैरव का गमक युक्त तोड़ा निम्न प्रकार है :--

धधध,नीनीनी, धध ध, ससस,निनिनि रे रेरे, सरे, गम, पम,
गम, गरे, सरे, निस, धधध, नीनीनी,धध ध, ससस,निनिनि, रे
रेरे, सरेगम, पम, गम, गरे, सरेनिस धधध, नीनीनी, ध-
नीनीनी,ससस,नी-, ससस, रेरेरे,स- गगग, ममम, ग-,
धधध,नीनीनी,ध- नीनीनी ससस,नी- ससस, रेरेरे, स-
गगग, ममम, ग-, पधप,नीनीनी,ध- मपम, धधध,प-
गमग, पपप,म- रेगरे,ममम,ग-, पधप,नीनीनी,ध-
मपम,धधध,प- गमग,पपम,म- रेगरे,ममम,ग-
पधप,नीनीनी,मप, म,धधध,गमग,प पप,रेगरे,ममम,
पधप,नीनीनी,मप, म,धधध,गमग,प, पप, रेगरे,ममम,
गगग,ममम,पप,प, धधध, नीनीसं-, संनीधपधपमग,
म--ग--रे-, स--ध--नी-, रे---संनीधप,
धपमगम--ग, --रे-स--ध, --नी-रे---,
संनीधप धप मग, म--ग--रे-, स--ध--नी- रे

उपर्युक्त सम्पूर्ण तोड़ा जब गमक से बजाकर सम पर मिलते हैं तो बहुत ही आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार के तोड़ों का वादन बहुत कठिन होता है। सही प्रकार से बजाने पर यह तोड़े वास्तव में श्रोता को आनन्दविभोर कर देते हैं। क्योंकि उपर्युक्त तोड़े में जहां गमक की प्रचुरता है, वहीं बोलों का भी प्रयोग है, इस प्रकार के तोड़ों के प्रयोग से श्रोता के मुंह से वाह! वाह!! निकले बिना नहीं रहती। परन्तु उपर्युक्त तोड़े को ही अगर बिना गमक, बिना कठिन एवं उपयुक्त बोलों के बजाया जाय तो बहुत नीरस प्रतीत होगा। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। उपर्युक्त उदाहरणार्थ दिए गए तोड़े, मुख्यत: गमक वाले तोड़े का वादन ही श्रोता में अद्भुत भाव जागृत कर देता है। तोड़ों के वादन में क्षणिक ठहराव अथवा तनिक भिन्नता ही उसके सौन्दर्य को घटा अथवा बढ़ा देती है। इसी प्रकार लयकारी युक्त तोड़े का वादन भी बहुत प्रभावशाली प्रभाव डालता है। राग बिलासखानी तोड़ी में बजाया एक लयकारी युक्त तोड़ा निम्न-लिखित है। इसका प्रारम्भ दुगुन से किया गया है तथा अन्त बारहगुन पर किया है :--

ध़ - स - -रे़ स - रे़ - ग़ - - ग़ म -

ग़ पप प ध़, -नी ध़ म, गमम़ ग़रे़, ग़रे़ स-

-नीध़-, -सरे़-, ग़ -, -नी ध़ -,

-स रे़ - ग़-- नी ध़ - - स रे़ -

गगग़, रेस, रेरेरे़, ग़ प, ग़गग़, पध़, नीनीनी, ध़म,

ग़म, मग़रे़, ग़रे़, नी ध़ स रेरेरे़, रे़ ग़, म ग़, ग़गग़, ग़ प, ध़ नी,

पपध़, रें सं गं रें, नीनीनी, नीधमग़, रेरेरे़, ग़रेनिध़, स- - रे़ ग़ - -

रेरेरे़, ग़रेनिध़ स--रे़ ग़---, रेरेरे़, ग़रेनी ध़, स- - - - - - रे़,

पधुप,नीधुम,गु- गुम-गुध मगुरे- गुगुग, मगुरे, सरेगु, पपप, धुनीधु, मगुम,
गुपप, धुनीपधुसंरें, गुरेरें,गुरेंनीधुमगु, पधुनी,गुपधु,नीधुम, गुमगु,मगुरे, सरेगु,
गुपधुनीपधुसंरें गुरेंनीधु, नीधुमगुमगुरेस-गुरे सरेगु, सरेगु, पधुनी, पधुनी,
नीधुम, मगुरे, गु - - - - - -, -३

इस प्रकार उपर्युक्त एक तोड़े में मिज़राब के बोलों का वैशिष्ट्य, लय वैभिन्न्य गमक आदि अनेक जटिलताओं को सम्मिलित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार के तोड़े वास्तव में श्रोता को असमंजस में ही डालने वाले होते हैं। इस प्रकार के अनेक जटिलतम तोड़ों का भी प्रयोग सितार में किए जाने से सितार वादन आज सौन्दर्यता के दृष्टिकोण से सबसे आगे हो गया है।

कुछ सितार वादक अपने वादन में मसीतखानी गत के स्थान पर मध्य लय की गत भी बजाते हैं। ये गतें सामान्यत: एकताल, झपताल, रूपक, धमार आदि तालों में होती हैं। प्रत्येक गत पर उस रागविशेष एवं ताल विशेष, दोनों का सम्मिलित प्रभाव ही सौन्दर्योत्पादन करता है। झपताल, एक ताल और रूपक ताल में बजायी गतें सामान्यत: चंचल होंगी जबकि धमार ताल में बजायी गत गम्भीर प्रभाव को व्यक्त करेगी। राग अहीर भैरव, झपताल में बजाई गत निम्नलिखित है --

स्थाई :-- × २ ० ३
ग म । रे रे स स । नी सस । धं नी -स रे-
ग म । प नी ध । म प । गम रेस रे-
ग म । प नी ध । म प । नीधपम, धपमप, गमपम,

अन्तरा :-- × २ ० ३
ग म । ध नी ध । प ध । नी - - नी - -
सं - । सं नी सं । नी नी। धध, पम, ग-
सं सं । रें रें सं । नी सं। नी नी ध

उपर्युक्त गत में सौन्दर्य अवश्य है परन्तु सरलता एवं सादगी है । जबकि राग बिलासखानी तोड़ी में एकताल में रची हुई गत जो कि अपेक्षाकृत कठिन है, भिन्न सौन्दर्यानुभूति कराती है :--

स्थाई :--

× ० २ ० ३ ४
नी
ध पप । ध म । - म । ग रेरे । ग स । - स
रे
नी ध । स रे । ग - । गप धनी। धम गम । गरे स-
स रेरे। ग म । ग रे । ग - । - रे । स -
म
स - । - - । ग रे । ग रे । नी ध । - -

ध- धध । स- सस । ग- गग । प- पप
ग प । ध नी । प ध । पध सें
गंरें नीध । नीध मग । म ग रे स । स रे ग-
म- सरे । ग - म- । सरे ग- । म - - -

अन्तरा :-

× ० २ ० ३ ४
ग गग । ग प । पप प । ध धध । ध प । ध ध प
नीध
सं -। - - । सं - । ध रें । - सं । - -
प धध । सं रें । गं रें । गं रें । नी ध । - -
नीध मग । मग रेस । सरे गम । ग रे स- । - - ध । ध ध ध ध ध
×

उपर्युक्त गत में `रा` बोल के प्रयोग के बाहुल्य से बहुत सुन्दर रूप निखर कर आता है । गत के प्रत्येक आवर्तन के प्रत्येक खण्ड के प्रथम स्वरों को `रा` बोल द्वारा ही बजाया जाय तथा स्थाई की पांचवीं लाइन के सभी स्वर समूह ध- धध, स- सस, ग- गग, प- पप को मंद्र सप्तक के पंचम से घसीट लेकर बजाना है । इस

प्रकार की गत व उसमें तिहाई से अन्त होना बहुत ही सुन्दर एवं आनंददायी प्रतीत होता है । इस गत के वादन से बिलासखानी तोड़ी जैसे राग में भी चंचलता का आभास होने लगता है । जबकि धमार ताल में निबद्ध गत किसी चंचल प्रकृति के राग में भी होने पर, कुछ गांभीर्य ही प्रकट करेगी । राग नन्द में धमार तालबद्ध गत निम्न लिखित है --

३ × २ ०
गग गध प- रे-रेस । ग ग म सस गा । मम ध । प गमधप रेसनिस

इस प्रकार कुछ सितार वादक मसीतखानी गतों के पश्चात् किसी अन्य ताल में मध्य गत फिर इसमें दुगुन-चौगुन के तोड़े लगाते हैं फिर रजाखानी गत का वादन करते हैं । रजाखानी गत का वादन तीनताल में ही सामान्यत: किया जाता है परन्तु इसकी लय काफी तेज होती है । इसी कारण कुछ कलाकार इसे द्रुत गत भी कहते हैं । इस प्रकार की गतों में दिर दिर बोलों का प्राधान्य रहता है तथा यह ठुमरी एवं तराना आदि के आधार पर रची होने के कारण चंचल प्रकृति की होती हैं । रजाखानी गतों में लय की विचित्रता, आड़, कुआड़ आदि को दिखाने का पूरा अवसर होता है । उच्च श्रेणी के कलाकार रजाखानी गत को तीसरी, पांचवीं, सातवीं, ग्यारहवीं, पन्द्रहवीं आदि मात्राओं से प्रारम्भ करके जब बजाते हैं, तो उसका लय वैचित्र्य देखते ही बनता है । उदाहरणार्थ राग शुद्ध सारंग की रजाखानी गत निम्न लिखित है, जो कि तीनताल में है तथा बारहवीं मात्रा से प्रारम्भ की गयी है --

स्थाई :--

			३ म | रे नि -स
			दा | रा दा s रा
×	२	०	
नी- ध प |	नी सस रेरे मम |	रे- रेस - रे |	मे प ध मे
दा s दा रा |	दा दिर दिर दिर |	दा s रदा s दा |	रा दा दा रा
प - नीध पमे |	धप मेप रेम रेस |	रे- रेस -स	
दा s दिर दिर |	दिर दिर दिर दिर |	दा s रदा sर	

अन्तरा :--

```
                                                    ३
                                              म । प नीसां रें सां
                                                  |
                                              दा। रा दिर दा रा

×          २                 ०                 ३
नी - - प । - ध मंम पप । म- मरे -रे म । प नी -नी
           |                 |                 |
दा s s दा। s रा दिर दिर।दाऽ रदा sर दा। रा दा s रा

सं- -रें संनी धप । मंप धप रेम रेस । रे- रेस -स
दाऽ sर दिर दिर। दिर दिर दिर दिर। दाऽ रदा sर
```

इस प्रकार की गतें जो कि सुन्दर स्वर संयोजन एवं मिज़राब के बोलों से युक्त होने के साथ ही जब काण, कृंतन, मीड़, घसीट, मुर्की आदि अलंकरणों की सहायता से बजायी जाती है, तो बहुत ही सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी प्रतीत होती है। सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं, इस प्रकार की मात्राओं से गत प्रारम्भ करने पर काफी दुरूह एवं श्रोता को कुछ असमंजस में डालती सी प्रतीत होती है। इसके साथ ही अगर सम अथवा खाली से भी गत का प्रारम्भ है, परन्तु उसके स्वर लगाव में सौन्दर्यात्मक का ध्यान रखा गया है तो वह भी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। राग बिलासखानी तोड़ी की रजाखानी गत जो तीनताल में बद्ध है, निम्न प्रकार है --

स्थाई :--

```
×          २                 ०                 ३
प़ धध़ प़ स । - स रेरे गग़ । रे- रेस -स ग़ । प नी - ध़
दा दिर दा रा। s दा दिर दिर। दाऽ रदा sर दा । रा दा s रा

म - - रे । - ग़ रे स । सरे गप धनी धम । गम गरे गरे स-
दा s s दा। s रा दा रा। दिर दिर दिर दिर । दिर दिर दिर दिऽ

प़ धध़ प़ स । - स रेरे गग़ । रे- रेस -स ग़ । प नी - ध़
दा दिर दारा। s दा दिर दिर। दाऽ दा sर दा। रा दा s रा

म - - - । रे गग़ रे नी । -ध़ प़ ध़ । स - स, रे
दा s s s । दा दिर दा रा । sदा रा दा । दा s दा, दा
```

- ग रे स | ग रेरे ग प | - प ध ध | ध - - प धम
रा दा रा | दा दिर दा रा | s दा दा रा | दाs sरा दारा

- म ग रे | गरे सरे गप धनी | पध सरें गरें नीध | नीध मग मग रेस
s रा दा रा | दिर दिर दिर दिर | दिर दिर दिर दिर | दिर दिर दिर दिर

अन्तरा :--

ग | ग प - ध
दा | रा दा रा

× 2 0 3 स
सं - - ध | - सं रेंरें गंगं | रें- रेंसं -सं सं- | नि रेंसं गंरें
दाs s दा | s रा दिर दिर | दाs रदा sर दाs | रा दिर दारा

नी - - ध | - म ग - | पध सरें गरें नीध | नीध मग मग रेस
दा s s दा | s रा दा s | दिर दिर दिर दिर | दिर दिर दिर दिर

उपर्युक्त गत का प्रारम्भ सम से होने पर भी यह, गमक, कृंतन, मीड़ आदि अलंकरणों की सजावट के साथ बजाई जायेगी, अत: यह गत बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती है। इसगत की एक अन्य विशेषता यह है कि इसकी प्रथम स्वर संगति जोकि बार-बार आलाप व तोड़ों आदि के साथ बजाई जाती है, वह सोलह मात्रा की जगह बत्तीस मात्रा की है। इस तरह इस बिलासखानी तोड़ी की गत का अपना पृथक ही प्रभाव होता है जोकि बहुत आकर्षक लगता है।

इसी तरह कुछ गतें सुनने में उतनी सुन्दर एवं कठिन नहीं प्रतीत होतीं परंतु स्वयं जब बजाने की कोशिश करते हैं तो उसका सौन्दर्य एवं कठिनता दोनों का ही आभास मिल जाता है।

रजाखानी गत में आलाप एवं तोड़े दोनों का ही प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह प्रयोग मसीतखानी गत के आलाप एवं तोड़ों की तरह ही द्रुत लय में होता है तथा तोड़े सामान्यत: ठाठ व दुगुन में लगाए जाते हैं। रजाखानी गतों में वादन के सौन्दर्यात्मक अलंकरणों का प्रयोग प्रचुरता से होता है। जो सितार वादक ख्याल अंग

का वादन करते हैं, वे इन गतों में पूरा ख्याल ही उतार कर रख देते हैं। इनके वादन से तन्त्रकारी के स्थान पर गायकी का सौन्दर्य निरूपण ही होता है।

सितार वादन का अन्तिम चरण झाला है। इसके वादन में मिज़राब के बोलों का प्राधान्य रहता है। जैसाकि जोड़ झाले में बताया गया है, यह भी उसी प्रकार का होता है, परन्तु यह सीधा अर्थात् दा रा रा रा बोलों के द्वारा बजाया जाता है तथा 'सुलट झाला' कहलाता है। इसके वादन में कलाकार स्वरों पर मीड़ लेकर तथा मिज़राब के दुरूकर एवं द्रुत प्रयोग के साथ सौन्दर्य को उजागर करता है। इसमें विभिन्न प्रकार के मिज़राब के बोलों द्वारा श्रोता को आश्चर्य में डाला जा सकता है। इसमें मिज़राब के बोल निम्न प्रकार लगाए जाने पर बहुत शोभायमान होते हैं :--

१. दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा रा रा

२. दा रा रा दा रा रा दा रा दा रा रा दा रा रा दा रा

३. दा रा दा रा दा रा रा रा दा रा दा रा दा रा रा रा

४. दा रा रा रा रा रा रा रा दा रा रा दा रा रा दा रा

५. दा रा दा दा दा रा दा रा दा रा रा रा दा रा रा रा

६. दा रा दा दा रा दा रा दा दा रा दा रा रा रा रा रा

७. रा रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा रा रा दा रा

आदि अनेक प्रकार के बोल में विभिन्न रागों के स्वर प्रयुक्त करके झाला वादन किया जाता है तथा बीच-बीच में छोटी-छोटी तानें भी लगा दी जाती हैं तथा जब झाले की लय अपने चरमोत्कर्ष पर होती है तब तिहाई लगाकर झाले का अथवा कह सकते हैं कि सितार वादन के प्रदर्शन का अन्त किया जाता है। यह तिहाई भी सादा से सादा हो सकती है यथा राग अमीर भैरव के लिए तिहाई - ध़ नी़ रे़ - ध़ नी़ रे़ ध़ नी़ - ३रे़।

अन्यथा अगर वादन में कुछ चमत्कार अथवा कठिनता दिखानी है, तो निम्न प्रकार की चक्करदार तिहाई से अन्त करना वास्तव में सौन्दर्य की साक्षात प्रतिमा ही खड़ी कर देता है। राग बिलासखानी तोड़ी फाले की तिहाई :--

रेंरें गेंगें संसं रेंरें नींनी धुधु मम गुगु
रेंरे गुगु सस रेंरे नींनी धुधु स- --
प- धु सं- -प -धु सं- -प -धु -
प - धु सं - - प -धु सं - - प - धु -
-प- धु सं - - प- धु सं - - प- धु- ३

उपर्युक्त तिहाई को पुन: तीन बार बजाकर वादन को समाप्त करने पर वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ज्यादा ही कठिन अथवा टेढ़ी चीज़ बज गई। इस प्रकार का वादन श्रोता को आनन्द मग्न कर देता है और वास्तव में श्रोता कढ़ी दर कढ़ी वादक के वादन में एकाकार हो तन्मयता की स्थिति को प्राप्त होता है।

आजकल अपने प्रदर्शन का अन्त सितार वादक ठुमरी बजाकर ही करते हैं जिससे कि अगर कोई गंभीर प्रकृति का राग बजाया जाता है, जैसे दरबारी कान्हड़ा, तो श्रोता उससे प्रभावित होकर गम्भीर हो जाते हैं। अत: उन्हें पुन: चंचल अथवा क्रियाशील करने के लिए ठुमरी का वादन बहुत महत्वपूर्ण होता है। किसी भी राग को सुनने पर वह उसी में घुल-मिल जाता है। अत: उसे उस वातावरण से निकालने के लिए ठुमरी का वादन किया जाता है। ठुमरी वादन कुछ ही रागों में खिलता है। यथा -- खमाज, पीलू, भैरवी, देस, पहाड़ी, तिलंग आदि ठुमरी प्रधान राग हैं। इनकी प्रकृति चंचल एवं श्रृंगारिक होती है। ठुमरी तो एक अलंकारों से सुसज्जित नारी की जाह अलंकरणों का ही ढेर है। इसके वादन स्वर को भांति-भांति से सजा कर लगाना ही एक कला होती है। ठुमरी के वादन में तालें भी अधिकतर इसी की प्रकृति

की ली जाती हैं यथा कहरवा, दादरा आदि । ठुमरी को सही लिखकर व्यक्त करना बहुत ही कठिन काम है क्योंकि इसका लेखन ~~असंभव~~ असंभव है अथवा कह सकते हैं कि ठुमरी को लेखनी द्वारा पूरी तरह नहीं बांधा जा सकता क्योंकि इसकी प्रवृत्ति स्वच्छंद होती है । अत: बंधन पसंद नहीं करती । भैरवी की एक ठुमरी का थोड़ा सा अंग निम्न प्रकार है --

दादरा ताल :--

× २

-- रेरे गम । रेग -स रे-

स- -- स- । गम -म प-

-- रेरे गम । रेग -स रे-

स- पप धं- । स- -स स-

-- रेरे गम । रेग -स रे-

स- नीनी स- । म- -म म-

-- गग मप । गम -ग ग-

-- गम पनी । धं- धंध धंध

म, धंध पम गरे । ग -- --

-रेरे गम । रेग -स रे-

स- पनी सरे । गरे ग- गग

गग गरे गरे । गरे स- रे-

म- रेग -स । रे- स- रे-

म- रेग -स । रे- स- रे-

म- रेग -स । रे- स- --

स- निस -धं । प- -- गप

धनी पधं नीधं । प- म,धंध पम

गुरे गु- -- । -- -- --

-- रेरे गुम । रेगु -स रे-

इस प्रकार ठुमरी वादन में यह ध्यान देने योग्य बात होती है कि इसमें राग रूप को ध्यान में रखते हुए बारहों स्वर लगाने की स्वतंत्रता होती है। जैसे कि उपर्युक्त भैरवी ठुमरी के अंश में दोनों रिषाम का प्रयोग किया गया है तथा अन्तरे में वादन करने पर दोनों धैवत का भी प्रयोग बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। इस प्रकार ठुमरी में बारहों स्वरों का प्रयोग करके चतुर वादक श्रोता को रसमग्न कर देते हैं। सितार पर ठुमरी वादन के साथ थोड़ा-सा उस रागिनी का रूप बता दिया जाय अथवा थोड़े हाव-भाव प्रदर्शित किए जाने पर वास्तव में रागिनी का वही रूप जो कि शास्त्रों में बताया जाता है, निखरता प्रतीत होता है। परन्तु इसमें वादक की कुशलता एवं चतुराई से ही यह सब सम्भव है। किसी नौसिखिए को अगर बजाने के लिए कहा जाय,तो यह सबके बस की बात नहीं होती है तथा काफी रियाज़ एवं अनुभव के पश्चात् ही इसका ज्ञान सम्भव है। ठुमरी वादन में लय का ठोस ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। ठुमरी वादन की समाप्ति भी दो प्रकार से की जाती है। कुछ कलाकार तिहाई लगाकर समाप्त कर देते हैं, जबकि कुछ सितार वादक किसी ताल में ठुमरी बजाने के पश्चात् तीनताल में गत बजाकर झाला बजाते हैं। यह झाला भी रजाखानी गत के बाद बजाए जाने वाले झाले के समान ही सौन्दर्योत्पादन करता है। और वादन का अन्त अथवा सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष झाले के बाद तिहाई लगाकर होता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन संगीतज्ञ राग के प्रस्तुतीकरण में जिस प्रकार राग की प्रतिमा खड़ी कर देते थे, तथा पत्थर पिघलने, पानी बरसने और दीपक जलने आदि के भावों का उद्दीपन करने में समर्थ थे, वह शक्ति आधुनिक समय

के सितार वादन में नहीं है। इसका प्रमुख कारण राग के नियमों की शिथिलता एवं निरर्थक आडम्बर हैं। प्राचीनकाल के संगीतज्ञ योगी होते थे, वे अपनी साधना द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत कर लेते थे, जिससे कि उनका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता था तथा ये सिद्ध योगी अपनी कला द्वारा श्रोता पर इच्छित प्रभाव डालने में समर्थ थे। परन्तु जब कलाकार राज्याश्रित हुए तो उन्हें राजाज्ञा के कारण शास्त्रीय नियमों को त्यागकर गाना-बजाना पड़ा। फलस्वरूप राग में जो दम थी अथवा जो रस था, वह लुप्त होता गया तथा आधुनिक प्रदर्शनकारी युग में 'रस' शब्द का संगीत में अल्प स्थान ही रह गया तथा सितार वादन के सम्बन्ध में जैसाकि वर्णित किया गया है कि केवल चार रसों की ही अवतारणा संभव है और वह भी मिश्रित रूप में। अर्थात् कोई एक 'राग के द्वारा एक रस की अनुभूति कराएगा' यह कथन असम्भव हो गया है तथा एक ही राग के वादन में आलाप भिन्न रस का प्रतिपादन करता है। तथा गत भिन्न रस का प्रतिपादन करती है जबकि तोड़े के द्वारा अलग ही रसाभास होता है। अत: सितार वादन के सम्बन्ध में 'रस' को सौन्दर्य के नाम से व्यक्त करना ही अधिक तर्कसम्मत प्रतीत होता है। इसका मूल कारण यही है कि आधुनिक युग प्रदर्शन का युग है। इसमें एक कलाकार को कुछ निश्चित समय में ही श्रोता पर अपने वादन का प्रभाव डालना होता है, अत: वह उसी निश्चित समय में ही एक राग लेता है और उसमें आलाप, जोड़ालाप, जोड़झाला, मसीतखानी गत, रजाखानी गत तथा झाला बजाकर तथा इसके बाद कोई एक ठुमरी बजाकर अपने प्रदर्शन की समाप्ति करता है। इन कलाकारों के वादन में किसी एक राग में आलाप दूसरे में गत तथा किसी तीसरे राग में तानें यथा क्रमश: दरबारी में आलाप, सूहा में गत तथा अडाना में तानें बजानी संभव नहीं होतीं। अत: वह श्रोता की रुचि को ध्यान में रख कर एक ही राग में सबकुछ बजा देते हैं जिससे 'सौन्दर्य' ही प्रधान हो जाता है।

इस प्रकार एक उच्चकोटि का सितार-वादक आलाप के वादन से ही श्रोता के साथ अपना सांगीतिक सम्बन्ध जोड़ना प्रारम्भ कर देता है तथा अपने वादन की तारतम्यता के साथ ही वह श्रोता के साथ अपने सांगीतिक संबंधों को दृढ़ करता जाता है और श्रोता भी परिणामस्वरूप सितार वादन में एकाकार हो जाता है, (यहां यह ध्यान देने योग्य है कि श्रोता भी संगीत का ज्ञाता तथा निश्चिन्त हो) यही तन्मयता की स्थिति है । इस समय श्रोता कुछ पल के लिये स्वयं को भूल जाता है । जब सितार वादन में तिहाई लगाकर वादन की समाप्ति की जाती है, यही सितार वादन के सौन्दर्य की पराकाष्ठा एवं सितार वादक का वर्तमान काल में उद्देश्य है ।